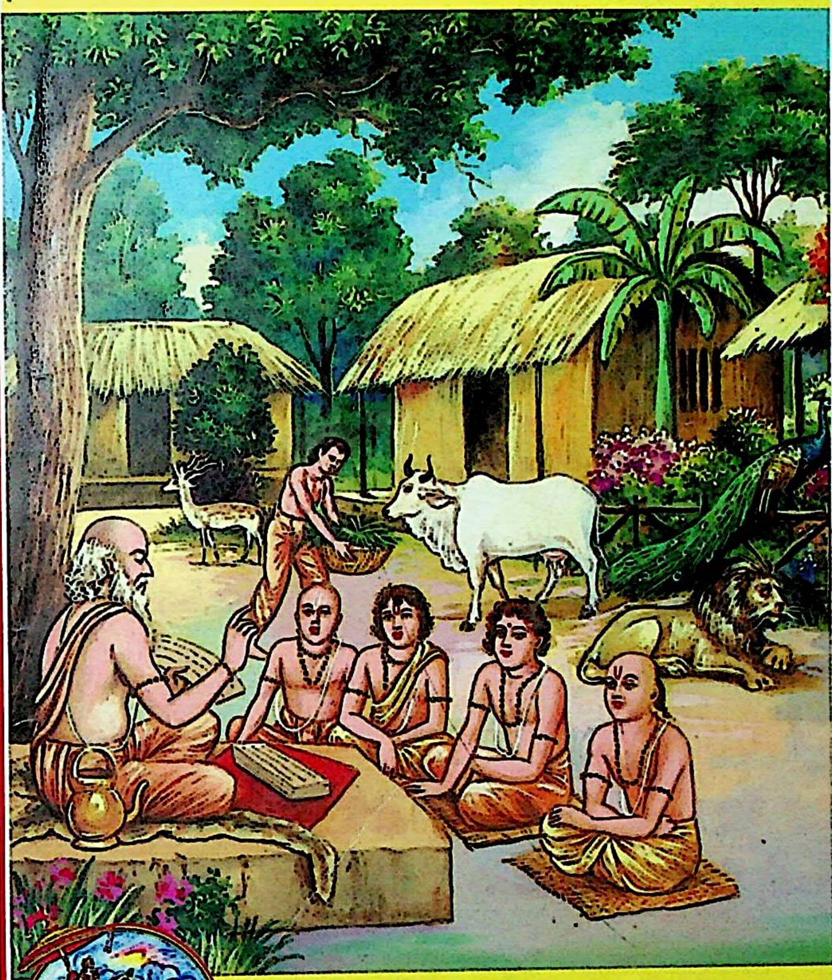
॥ श्रीहरिः ॥

1093 ▲

आदर्श कहानियाँ



गीताप्रेस, गोरखपुर

2.5

1093

॥ श्रीहरिः ॥

आदर्श कहानियाँ

[श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संगृहीत बत्तीस शिक्षाप्रद कहानियाँ]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

संकलनकर्त्ता— राजेन्द्रकुमार धवन

[1093] आ० क० १

सं० २०६६ चौबीसवाँ पुनर्मुद्रण २५,०००

कुल मुद्रण ५,२०,०००

❖ मूल्य—७ रु०

(सात रुपये)

ISBN 81-293-0176-8

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७

e-mail : booksales@gitapress.org website : www.gitapress.org

॥ श्रीहरिः ॥

प्राक्कथन

बालक हो, युवा हो अथवा वृद्ध हो, सबकी कहानियाँ सुननेमें स्वाभाविक रुचि रहती है। समाजके उत्थान और पतनमें कहानियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सन्तोंके मुखसे निःसृत कहानियाँ जहाँ समाजमें अमृत (सद्गुण-सदाचार)-की गंगा बहाती हैं, वहीं सांसारिक उपन्यास, सिनेमा, टेलीविजन आदिके द्वारा प्रसारित कहानियाँ समाजमें विष (दुर्गुण-दुराचार)-की सरिता बहाती हैं। बालककी प्रथम गुरु माँ भी कहानियोंके माध्यमसे ही उसके कोमल हृदयमें अच्छे संस्कार जाग्रत् करती है, जो उसके भावी जीवनको उन्नत बनानेमें सहायक होते हैं।

पारमार्थिक विषयको सरलतासे समझनेमें भी कहानियाँ बहुत सहायक होती हैं। पौराणिक कहानियों (कथाओं)-का भी यही तात्पर्य है कि पारमार्थिक विषय सरलतासे समझमें आ जाय। कठिन-से-कठिन पारमार्थिक बातोंको भी कहानियोंके सहारे सुगमतापूर्वक समझकर जीवनमें उतारा जा सकता है। कहानियोंके द्वारा मित्रसम्मित अथवा कान्तासम्मित उपदेश प्राप्त होता है, जो मनुष्यको स्वभावतः प्रिय होता है। इसलिये परम श्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज अपने प्रवचनोंमें मार्मिक विषयको समझानेके उद्देश्यसे अनेक कहानियाँ कहा करते हैं, जो आबालवृद्ध सभी श्रोताओंके हृदयपर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। उनमेंसे बत्तीस कहानियोंका संकलन पहले 'आदर्श कहानियाँ' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। अब तीस कहानियोंका संकलन प्रस्तुत पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, पाठकगण इन रोचक एवं ज्ञानप्रद कहानियोंको पसन्द करेंगे और इनकी शिक्षाओंको अपने जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करेंगे।

विनीत—

संकलनकर्त्ता

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

१. भगवान्‌की कृपा

एक राजा था। उसका मन्त्री भगवान्‌का भक्त था। कोई भी बात होती तो वह यही कहता कि भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी! एक दिन राजाके बेटेकी मृत्यु हो गयी। मृत्युका समाचार सुनते ही मन्त्री बोल उठा—भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी! यह बात राजाको बुरी तो लगी, पर वह चुप रहा। कुछ दिनोंके बाद राजाकी पत्नीकी भी मृत्यु हो गयी। मन्त्रीने कहा—भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी! राजाको गुस्सा आया, पर उसने गुस्सा पी लिया, कुछ बोला नहीं। एक दिन राजाके पास एक नयी तलवार बनकर आयी। राजा अपनी अँगुलीसे तलवारकी धार देखने लगा तो धार बहुत तेज होनेके कारण चट उसकी अँगुली कट गयी! मन्त्री पासमें ही खड़ा था। वह बोला—भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी! अब राजाके भीतर जमा गुस्सा बाहर निकला और उसने तुरन्त मन्त्रीको राज्यसे बाहर निकल जानेका आदेश दे दिया और कहा कि मेरे राज्यमें अन्न-जल ग्रहण मत करना। मन्त्री बोला—भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी! मन्त्री अपने घरपर भी नहीं गया, साथमें कोई वस्तु भी नहीं ली और राज्यके बाहर निकल गया।

कुछ दिन बीत गये। एक बार राजा अपने साथियोंके साथ शिकार खेलनेके लिये जंगल गया। जंगलमें एक सूअरका पीछा करते-करते राजा बहुत दूर घने जंगलमें निकल गया। उसके सभी साथी बहुत पीछे छूट गये। वहाँ जंगलमें डाकुओंका एक दल रहता था। उस दिन डाकुओंने काली देवीको एक मनुष्यकी बलि देनेका विचार किया हुआ था।

संयोगसे डाकुओंने राजाको देख लिया। उन्होंने राजाको पकड़कर बाँध दिया। अब उन्होंने बलि देनेकी तैयारी शुरू कर दी। जब पूरी तैयारी हो गयी, तब डाकुओंके पुरोहितने राजासे पूछा—तुम्हारा बेटा जीवित है? राजा बोला—नहीं, वह मर गया। पुरोहितने कहा कि इसका तो हृदय जला हुआ है। पुरोहितने फिर पूछा—तुम्हारी पत्नी जीवित है? राजा बोला—वह भी मर चुकी है। पुरोहितने कहा कि यह तो आधे अंगका है। अतः यह बलिके योग्य नहीं है। परन्तु हो सकता है कि यह मरनेके भयसे झूठ बोल रहा हो! पुरोहितने राजाके शरीरकी जाँच की तो देखा कि उसकी अँगुली कटी हुई है। पुरोहित बोला—अरे! यह तो अंगभंग है, बलिके योग्य नहीं है! छोड़ दो इसको! डाकुओंने राजाको छोड़ दिया।

राजा अपने घर लौट आया। लौटते ही उसने अपने आदमियोंको आज्ञा दी कि हमारा मन्त्री जहाँ भी हो, उसको तुरन्त ढूँढ़कर हमारे पास लाओ। जबतक मन्त्री वापिस नहीं आयेगा, तबतक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगा। राजाके आदमियोंने मन्त्रीको ढूँढ़ लिया और उससे तुरन्त राजाके पास वापिस चलनेकी प्रार्थना की। मन्त्रीने कहा—भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी! मन्त्री राजाके सामने उपस्थित हो गया। राजाने बड़े आदरपूर्वक मन्त्रीको बैठाया और अपनी भूलपर पश्चात्ताप करते हुए जंगलवाली घटना सुनाकर कहा कि 'पहले मैं तुम्हारी बातको समझा नहीं। अब समझमें आया कि भगवान्‌की मेरपर कितनी कृपा थी! भगवान्‌की कृपासे अगर

मेरी अँगुली न कटती तो उस दिन मेरा गला कट जाता! परन्तु जब मैंने तुम्हें राज्यसे निकाल दिया, तब तुमने कहा कि भगवान्‌की बड़ी कृपा हो गयी तो वह कृपा क्या थी, यह अभी मेरी समझमें नहीं आया! मन्त्री बोला—महाराज, जब आप शिकार करने गये, तब मैं भी आपके साथ जंगलमें जाता। आपके साथ मैं भी जंगलमें बहुत दूर निकल जाता; क्योंकि मेरा घोड़ा आपके घोड़ेसे कम तेज नहीं है। डाकूलोग आपके साथ मेरेको भी पकड़ लेते। आप तो अँगुली कटी होनेके कारण बच गये, पर मेरा तो उस दिन गला कट ही जाता! इसलिये भगवान्‌की कृपासे मैं आपके साथ नहीं था, राज्यसे बाहर था; अतः मरनेसे बच गया। अब मैं पुनः अपनी जगह वापिस आ गया हूँ। यह भगवान्‌की कृपा ही तो है!

२. पापका फल भोगना ही पड़ता है

मनुष्यको ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये कि मेरा पाप तो कम था पर दण्ड अधिक भोगना पड़ा अथवा मैंने पाप तो किया नहीं पर दण्ड मुझे मिल गया! कारण कि यह सर्वज्ञ, सर्वसुहृद्, सर्वसमर्थ भगवान्‌का विधान है कि पापसे अधिक दण्ड कोई नहीं भोगता और जो दण्ड मिलता है, वह किसी-न-किसी पापका ही फल होता है। एक सुनी हुई घटना है। किसी गाँवमें एक सज्जन रहते थे। उनके घरके सामने एक सुनारका घर था। सुनारके पास सोना आता रहता था और वह गढ़कर देता रहता था। ऐसे वह पैसे कमाता था। एक दिन उसके पास अधिक सोना जमा हो गया। रात्रिमें पहरा

लगानेवाले सिपाहीको इस बातका पता लग गया। उस पहरेदारने रात्रिमें उस सुनारको मार दिया और जिस बक्सेमें सोना था, उसे उठाकर चल दिया। इसी बीच सामने रहनेवाले सज्जन लघुशङ्काके लिये उठकर बाहर आये। उन्होंने पहरेदारको पकड़ लिया कि तू इस बक्सेको कैसे ले जा रहा है? तो पहरेदारने कहा—'तू चुप रह, हल्ला मत कर। इसमेंसे कुछ तू ले ले और कुछ मैं ले लूँ।' सज्जन बोले—'मैं कैसे ले लूँ? मैं चोर थोड़े ही हूँ!' पहरेदारने कहा—'देख, तू समझ जा, मेरी बात मान ले, नहीं तो दुःख पायेगा।' पर वे सज्जन माने नहीं। तब पहरेदारने बक्सा नीचे रख दिया और उस सज्जनको पकड़कर जोरसे सीटी बजा दी। सीटी सुनते ही और जगह पहरा लगानेवाले सिपाही दौड़कर वहाँ आ गये। उसने सबसे कहा कि 'यह इस घरसे बक्सा लेकर आया है और मैंने इसको पकड़ लिया है।' तब सिपाहियोंने घरमें घुसकर देखा कि सुनार मरा पड़ा है। उन्होंने उस सज्जनको पकड़ लिया और राजकीय आदमियोंके हवाले कर दिया। जजके सामने बहस हुई तो उस सज्जनने कहा कि 'मैंने नहीं मारा है, उस पहरेदार सिपाहीने मारा है।' सब सिपाही आपसमें मिले हुए थे, उन्होंने कहा कि 'नहीं इसीने मारा है, हमने खुद रात्रिमें इसे पकड़ा है', इत्यादि।

मुकदमा चला। चलते-चलतें अन्तमें उस सज्जनके लिये फाँसीका हुक्म हुआ। फाँसीका हुक्म होते ही उस सज्जनके मुखसे निकला—'देखो, सरासर अन्याय हो रहा है! भगवान्‌के दरबारमें कोई न्याय नहीं! मैंने मारा नहीं, मुझे दण्ड

हो और जिसने मारा है, वह बेदाग छूट जाय, जुर्माना भी नहीं; यह अन्याय है!' जजपर उसके वचनोंका असर पड़ा कि वास्तवमें यह सच्चा बोल रहा है, इसकी किसी तरहसे जाँच होनी चाहिये। ऐसा विचार करके उस जजने एक षड्यन्त्र रचा।

सुबह होते ही एक आदमी रोता-चिल्लाता हुआ आया और बोला—'हमारे भाईकी हत्या हो गयी, सरकार! इसकी जाँच होनी चाहिये।' तब जजने उसी सिपाहीको और कैदी सज्जनको मरे व्यक्तिकी लाश उठाकर लानेके लिये भेजा। दोनों उस आदमीके साथ वहाँ गये, जहाँ लाश पड़ी थी। खाटपर लाशके ऊपर कपड़ा बिछा था। खून बिखरा पड़ा था। दोनोंने उस खाटको उठाया और उठाकर ले चले। साथका दूसरा आदमी खबर देनेके बहाने दौड़कर आगे चला गया। तब चलते-चलते सिपाहीने कैदीसे कहा—'देख, उस दिन तू मेरी बात मान लेता तो सोना मिल जाता और फाँसी भी नहीं होती, अब देख लिया सच्चाईका फल?' कैदीने कहा—'मैंने तो अपना काम सच्चाईका ही किया था, फाँसी हो गयी तो हो गयी! हत्या की तूने और दण्ड भोगना पड़ा मेरेको! भगवान्के यहाँ न्याय नहीं!'

खाटपर झूठमूठ मरे हुएके समान पड़ा हुआ आदमी उन दोनोंकी बातें सुन रहा था। जब जजके सामने खाट रखी गयी तो खूनभरे कपड़ेको हटाकर वह उठ खड़ा हुआ और उसने सारी बात जजको बता दी कि रास्तेमें सिपाही यह बोला और कैदी यह बोला। यह सुनकर जजको बड़ा आश्चर्य हुआ।

सिपाही भी हक्का-बक्का रह गया। सिपाहीको पकड़कर कैद कर लिया गया। परन्तु जजके मनमें सन्तोष नहीं हुआ। उसने कैदीको एकान्तमें बुलाकर कहा कि 'इस मामलेमें तो मैं तुम्हें निर्दोष मानता हूँ, पर सच-सच बताओ कि इस जन्ममें तुमने कोई हत्या की है क्या?' वह बोला—बहुत पहलेकी घटना है। एक दुष्ट था, जो छिपकर मेरे घर मेरी स्त्रीके पास आया करता था। मैंने अपनी स्त्रीको तथा उसको अलग-अलग खूब समझाया, पर वह माना नहीं। एक रात वह घरपर था और अचानक मैं आ गया। मेरेको गुस्सा आया हुआ था। मैंने तलवारसे उसका गला काट दिया और घरके पीछे जो नदी है, उसमें फेंक दिया। इस घटनाका किसीको पता नहीं लगा। यह सुनकर जज बोला—'तुम्हारेको इस समय फाँसी होगी ही; मैंने भी सोचा कि मैंने किसीसे घूस (रिश्वत) नहीं खायी, कभी बेईमानी नहीं की, फिर मेरे हाथसे इसके लिये फाँसीका हुक्म लिखा कैसे गया? अब सन्तोष हुआ। उसी पापका फल तुम्हें यह भोगना पड़ेगा। सिपाहीको अलग फाँसी होगी।'

[उस सज्जनने चोर सिपाहीको पकड़कर अपने कर्तव्यका पालन किया था। फिर उसको जो दण्ड मिला है, वह उसके कर्तव्य-पालनका फल नहीं है, प्रत्युत उसने बहुत पहले जो हत्या की थी, उस हत्याका फल है। कारण कि मनुष्यको अपनी रक्षा करनेका अधिकार है, मारनेका अधिकार नहीं। मारनेका अधिकार रक्षक क्षत्रियका, राजाका है। अतः कर्तव्यका पालन करनेके कारण उस पाप-(हत्या-) का फल उसको यहीं मिल गया और परलोकके भयंकर दण्डसे उसका

छुटकारा हो गया। कारण कि इस लोकमें जो दण्ड भोग लिया जाता है, उसका थोड़ेमें ही छुटकारा हो जाता है, थोड़ेमें ही शुद्धि हो जाती है, नहीं तो परलोकमें बड़ा भयंकर (ब्याजसहित) दण्ड भोगना पड़ता है।]

इस कहानीसे यह पता लगता है कि मनुष्यके कब किये हुए पापका फल कब मिलेगा—इसका कुछ पता नहीं। भगवान्‌का विधान विचित्र है। जबतक पुराने पुण्य प्रबल रहते हैं तबतक उग्र पापका फल भी तत्काल नहीं मिलता। जब पुराने पुण्य खत्म होते हैं, तब उस पापकी बारी आती है। पापका फल (दण्ड) तो भोगना ही पड़ता है, चाहे इस जन्ममें भोगना पड़े या जन्मान्तरमें।

३. आँख और पेटकी बीमारी

सभी मनुष्योंमें दो तरहकी बीमारी है—आँखकी बीमारी और पेटकी बीमारी। आँखकी बीमारी क्या है?—

इस दुनियामें एक अँधेरा, सबकी आँखमें जो छाया।
जिसके कारण सूझ पड़े नहीं, कौन हूँ मैं कहाँ से आया।
कौन दिशा को जाना मुझको, किसको देख मैं ललचाया।
कौन है मालिक इस दुनियाका, किसने रची है यह माया।

और पेटकी बीमारी क्या है?—

इस दुनियामें एक कूप है, जिसका पार कोई नहीं पावै।
जिसको भरने कारण प्राणी, देश दिगन्तर को जावै।
दीन भये पर घर में जाकर, सेवा कर कर मर जावै।
भजन ध्यान चिन्तन ईश्वरका, जिसके कारण बिसरावै।

इस विषयमें एक कहानी है। एक वैद्य थे। उनके पास

एक रोगी पहुँचा। उसने वैद्यसे कहा कि मेरी आँखमें बड़ी पीड़ा हो रही है और पेटमें भी पीड़ा हो रही है। वैद्यने उसको लिटाकर उसका पेट देखा और आँख देखी। इतनेमें एक दूसरा रोगी आया। उसने भी कहा कि मेरी आँखमें और पेटमें बड़ी पीड़ा हो रही है। वैद्यने विचार किया कि यह कैसी हवा चली है, सबको एक ही बीमारी! वैद्यने दोनों रोगियोंके लिये अलग-अलग दवा लिख दी और कहा कि कम्पाउण्डरसे दवा ले लो। कम्पाउण्डरने दोनोंको दवाकी दो-दो पुड़िया बनाकर दे दीं, एक आँखके लिये और एक पेटके लिये। वैद्यने समझा दिया कि देखो, यह आँखमें डालनेकी पुड़िया है। इसको रातमें सोते समय आँखमें डालना और बार-बार पलक झपकाना, जिससे आँखसे गरम-गरम पानी निकल जायगा। फिर सो जाना। इससे आँख ठीक हो जायगी। यह दूसरी पुड़िया पेटके लिये है। इसको एक पाव जलमें डालकर आगपर रख देना। जब जल एक छटाक रह जाय, तब वह काढ़ा छानकर पी लेना। इससे पेट ठीक हो जायगा और दस्त लगनेसे आँखमें भी लाभ होगा।

दोनों रोगी दवा लेकर चले गये। घर जाकर एक रोगीने तो ठीक वैसा ही किया, जैसा वैद्यने कहा था। आँखकी दवा आँखमें डाल दी और पेटकी दवा पेटमें। परन्तु दूसरे रोगीने पुड़िया उलट दी! उसने पेटकी दवा आँखमें डाल दी और आँखकी दवा पेटमें डाल दी। आँखमें थोड़ा-सा कचरा भी पड़ जाय तो पीड़ा होने लगती है, पर उसने पेटका चूर्ण आँखमें डाल दिया! इससे आँखकी पीड़ा बढ़ गयी! आँखकी

दवा ठण्डी होती है, वह पेटमें चली गयी तो पेटकी पीड़ा भी बढ़ गयी! अब वह वैद्यको गाली देने लगा कि तेरे बापको मैंने मारा था क्या? वह तो अपनी मौत मरा था। फिर मेरेसे किस दिनका बदला लिया है! दूसरे दिन वह दवाखाना खुलनेसे पहले ही वहाँ जा बैठा। वैद्यजी आये और दवाखाना खोलकर उससे पूछा—कहो, कैसे हो?

वह बोला—कैसे क्या हूँ!

वैद्यने कहा—अरे, क्या हुआ?

वह बोला—हुआ क्या, जो तुमने किया, वही हुआ!

वैद्यने कहा—हमने क्या किया?

वह बोला—ऐसी दवा दे दी कि मेरी आँखकी पीड़ा भी बढ़ गयी और पेटकी पीड़ा भी बढ़ गयी! साफ कह देते कि मैं दवा नहीं देता! मेरे पास ज्यादा रुपया तो है नहीं, इसलिये उल्टी दवा दे दी।

वैद्यने कहा—भाई, पीड़ा कैसे बढ़ गयी? किसी आदमीको दवा जल्दी असर करती है, किसीको नहीं करती, यह तो अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार होता है, पर पीड़ा बढ़नेका तो कोई कारण ही नहीं है!

वह बोला—मैं तो भुक्तभोगी हूँ, मेरी पीड़ा तो बढ़ गयी! इतनेमें दूसरा रोगी आया। वैद्यने उससे पूछा—कहो, तुम कैसे हो? वह बोला—महाराज, बहुत आराम है। एक-दो दस्त लगे, पेट भी ठीक है और आँखें भी ठीक हैं। यह सुनते ही पहला रोगी बोला—देखो, यह पैसेवाला आदमी है, इसको तो बढ़िया दवा दे दी, मेरेको घटिया दे दी! वैद्यने

कहा—घटिया कैसे दे दी? जो दवा उसको दी, वही तुमको भी दी। तुम्हारी पुड़िया कैसी थी? रोगीने जेबसे चूर्णकी पुड़िया निकालकर वैद्यके सामने पटक दी और बोला—यह है वह पुड़िया। वैद्यने कहा—दूसरी पुड़िया? वह बोला—दूसरी तो मैं काढ़ा बनाकर पी गया! यह पुड़िया आँखमें डाली थी, दवा ज्यादा थी, इसलिये बच गयी। वैद्यने कहा कि इसको निकालो यहाँसे! उल्टी दवा तो यह खुद लेता है और कहता है कि तुमने मेरी पीड़ा बढ़ा दी!

इसी तरह हम सब लोग रोगी हैं। हमारी आँखकी बीमारी क्या है? वास्तविक बात सूझती नहीं है। खुद तो जानते नहीं, दूसरेकी मानते नहीं। जो अधूरा जानते हैं, उसीको पूरा मान लेते हैं कि बस, यही ठीक है। पेटकी बीमारी क्या है? पेट कभी भरता ही नहीं! दरिद्रका भी पेट नहीं भरता और लखपति-करोड़पतिका भी पेट नहीं भरता। कितना ही मिल जाय तो भी कहते हैं कि क्या करें, काम नहीं चलता। इन दोनों रोगोंके लिये भगवान्‌ने हमें दो पुड़िया दी हैं—प्रारब्ध और पुरुषार्थ। आँखकी बीमारीके लिये 'पुरुषार्थ' है और पेटकी बीमारीके लिये 'प्रारब्ध' है। पुरुषार्थ करेंगे, सत्संग-स्वाध्याय, विवेक-विचार करेंगे तो आँखका रोग दूर होगा और अपने कर्तव्यका पालन करते हुए प्रारब्धपर विश्वास करेंगे कि जो हमारे भाग्यमें लिखा है, वही मिलेगा* तो पेटका रोग दूर होगा।

---

*यद् भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते॥

'जो नहीं होनेवाला है, वह होगा नहीं और जो होनेवाला है, वह होकर ही

प्रारब्ध शोक-चिन्ता मिटानेके लिये है, आलसी-अकर्मण्य बनानेके लिये नहीं। जैसे, बेटा बीमार हो तो अपनी सामर्थ्यके अनुसार उसका भलीभाँति इलाज करते-करते अगर वह मर जाय तो मनमें इस बातको लेकर चिन्ता, शोक, दुःख नहीं होगा कि हमने अपनी तरफसे उसके इलाजमें कमी रखी। बेटा तो प्रारब्धके अनुसार ही मरेगा, पर अपने पुरुषार्थमें कमी होगी तो चिन्ता, शोक, दुःख होगा कि हमने अपने कर्तव्यका ठीक पालन नहीं किया! इसलिये जो करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न रहते हैं, उनकी आँखका रोग भी ठीक हो जाता है और पेटका रोग भी। परन्तु जो पुड़िया उलट देते हैं अर्थात् आँखके रोगके लिये प्रारब्ध और पेटके रोगके लिये पुरुषार्थ लगा देते हैं, उनके ये दोनों ही रोग बढ़ जाते हैं। ऐसे लोगोंसे सत्संग-स्वाध्याय, भजन-ध्यान करनेके लिये कहा जाय तो वे कहते हैं कि कैसे करें महाराज! हमारे तो भाग्यमें ही नहीं है। प्रारब्धसे मिलनेवाले धनके लिये रात-दिन पुरुषार्थमें लगे रहते हैं। सारा पुरुषार्थ पेटके लिये लगा देते हैं और आँखके लिये कुछ करते ही नहीं! भगवान्‌का नाम लेनेके लिये कहो तो कहते हैं कि नाम कैसे लें, मुखमें सौ मनका ताला लगा है! नाम लेना हमारे भाग्यमें लिखा ही नहीं है! भगवान्‌की ऐसी ही मरजी है, हम क्या करें? हमारा क्या दोष है?

रहेगा। चिन्तारूपी विषका नाश करनेवाली इस औषधका पान क्यों न किया जाय?'

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।
तुलसी चिन्ता क्यों करे भज ले श्रीरघुबीर॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
(मानस, बाल० ५२।४)

अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितिका प्राप्त होना 'प्रारब्ध' के अधीन है और प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करना 'पुरुषार्थ' के अधीन है। इसलिये कर्तव्य-पालन, सत्संग-स्वाध्याय, भजन-ध्यान आदि करनेमें तो मनुष्य स्वतन्त्र है, पर धन कमानेमें स्वतन्त्र नहीं है। मनुष्य यह नियम तो ले सकता है कि मैं रोजाना इतनी माला जप करूँगा, इतना स्वाध्याय करूँगा, पर यह नियम नहीं ले सकता कि मैं रोजाना इतने रुपये कमाऊँगा। कारण कि भजन-ध्यान आदि करना पुरुषार्थके अधीन है और रुपये कमाना प्रारब्धके अधीन है। परन्तु जहाँ पुरुषार्थ लगाना चाहिये, वहाँ प्रारब्ध लगा दिया और जहाँ प्रारब्ध लगाना चाहिये, वहाँ पुरुषार्थ लगा दिया। इससे दोनों बीमारियाँ बढ़ गयीं। पेटकी बीमारी बढ़नेसे जीवन-निर्वाहका खर्चा बहुत बढ़ गया। पढ़ाई-लिखाईमें, खान-पानमें, स्वाद-शौकीनीमें, रहन-सहनमें खर्चा बढ़ गया और कहते हैं कि स्टैण्डर्ड ऊँचा होना चाहिये! सारा पुरुषार्थ स्टैण्डर्ड ऊँचा करनेमें, पेट भरनेमें लगा दिया और आँखसे कुछ दीखता ही नहीं है कि भगवान् क्या हैं? संसार क्या है? मैं कौन हूँ? मेरेको क्या करना है? रात-दिन 'हाय पैसा! हाय पैसा!' करते हैं। अगर 'हाय भगवन्! हाय भगवन्!' करें तो निहाल हो जायँ! जिस लगनसे धन कमाते हैं, उस लगनसे साधन करें तो कल्याण हो जाय! परन्तु साधनकी यह दशा है कि नित्य नियम पूरा हुआ तो सोचते हैं कि आजकी आफत तो मिटी! माला पूरी हुई तो मानो जेलसे छूट गये! दूकानमें रोज सौ रुपये कमाते हैं और वे सौ रुपये

अगर सुबह ही पैदा हो जायँ तो भी दूकान दिनभर खोलकर बैठे रहेंगे। पर जप पूरा हो जाय तो माला लपेटकर रख देंगे! यह क्या है? यह उल्टी पुड़िया ले ली। इसलिये जो मिला है, उसमें सन्तोष करें; जो नहीं मिला है, उसकी कामना न करें; अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करें, दूसरोंकी सेवा करें और भगवान्‌का भजन-स्मरण, सत्संग-स्वाध्याय करें तो आँखकी पीड़ा भी ठीक हो जायगी और पेटकी पीड़ा भी।

४. सन्तको कैसे पहचानें?

सन्त-महात्मा और उनको पहचाननेवाले बहुत ही दुर्लभ हैं। आज तो दम्भ, पाखण्ड और बनावटीपन इतना हो गया कि असली सन्त-महात्माको पहचानना अत्यन्त ही कठिन कार्य हो गया है। पर सच्चे जिज्ञासुको पता लगता है। भगवान् कृपा करते हैं, तभी उनको पहचाना जा सकता है। अब उनकी पहचान क्या हो? हम उनकी पहचान नहीं कर सकते, हम तो अपनी पहचान कर सकते हैं।

एक कहानी है। एक नवयुवक राजगद्दीपर बैठा। पाँच-सात वर्ष राज्य करनेके बाद उसने अपने राज्यके बड़े-बूढ़ोंको इकट्ठा करके पूछा—'आपलोग बतायें कि राज्य हमारा ठीक रहा या हमारे पिताजीका ठीक था? अथवा हमारे दादाजीका ठीक था? किसका राज्य ठीक रहा? आपने हमारी तीनों पीढ़ियोंका राज्य देखा है। बेचारे सब चुप रहे। एक बहुत बूढ़ा आदमी खड़ा होकर कहने लगा कि 'महाराज! हम

आपकी प्रजा हैं। आप उमरमें छोटे हैं तो क्या हुआ, आप हमारे मालिक हैं। अब हम आपके बारेमें निर्णय कैसे करें कि आपमें कौन योग्य और कौन अयोग्य है? कौन बढ़िया और कौन घटिया है? यह हमारी क्षमता नहीं है। मेरी बात पूछें तो मैं अपनी बात तो कह सकता हूँ, पर आपकी परीक्षा नहीं कर सकता।' राजाने कहा—'अच्छा! अपनी बात बताओ।'

वह कहने लगा—'जब आपके दादाजीका राज्य था, उस समय मैं जवान था। मैं पढ़ा-लिखा था। शरीरमें बल भी अच्छा था। मैं एक लाठी पासमें रखता था। उस समय यदि पाँच-दस आदमी एक साथ भी सामना करनेके लिये आ जाते तो मैं हार नहीं खाता, बल्कि उन सबको मार दूँ—ऐसा मेरा विश्वास था। एक दिन मैं किसी गाँव जा रहा था। रास्ते चलते मेरे कानमें किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज आयी तो मैंने सोचा चलकर देखें, क्या बात है? मैं आवाजकी दिशामें गया, तो देखा कि एक सुन्दर युवती अकेली जंगलमें बैठी रो रही है। उसने बहुत कीमती गहने, कपड़े पहन रखे थे। मैं अचानक उसके पास पहुँचा तो वह डर गयी और एकदम चुप हो गयी। मैंने बड़े प्यारसे कहा कि बहिन! घबराओ मत। बताओ कि तुम क्यों रो रही हो? मेरे ऐसा कहनेपर वह आश्वस्त हुई और बोली—मैं पीहरसे ससुराल जा रही थी। साथमें दो-चार बैलगाड़ियाँ और ऊँट थे। रास्तेमें डाकू मिल गये, तो उनसे मुठभेड़ हो गयी। मेरे सम्बन्धी और डाकू आपसमें लड़ने लगे। मुझे डर लगा तो भागकर जंगलमें चली

आयी और यहाँ आकर बैठ गयी। अब उनका क्या हाल हुआ, यह तो भगवान् जानें? किन्तु मैं किधर जाऊँ, यह भी मुझे रास्ता मालूम नहीं है। मेरा जन्म-गाँव तो दूर रह गया, लेकिन ससुराल-गाँव पास ही है, ऐसा अन्दाज है। लेकिन मैं जानती नहीं, क्या करूँ? यह सोचकर रोना आ रहा है।' इस तरह कहकर उसने मुझे अपने ससुरालका पता बताया। मैं उस गाँवको जानता था, इसलिये मैंने उससे कहा—बहिन! तुम चलो, डरनेकी कोई बात नहीं है, मैं तुम्हारे साथ हूँ। पूछनेपर उसने अपने श्वशुरका नाम कागजपर लिखकर बताया। मैं उसके श्वशुरको जानता था, इसलिये उसे उसके ससुराल ले गया। रात हो चुकी थी, सब लोग तरह-तरहकी चिन्ता कर रहे थे। वे लोग बहुत दुःखी थे; क्योंकि बहूके शरीरपर गहने आदि बहुत थे। बहूको सही-सलामत पहुँची देखकर सबके मनमें प्रसन्नता छा गयी। उस स्त्रीने अपने घरवालोंसे कहा—इन सज्जनको मैं पिता कहूँ या भाई कहूँ। इन्होंने मुझे बड़े प्यारसे धीरज दिलाया और यहाँतक पहुँचाया। उसके श्वशुर मुझे इनाम देनेके लिये पाँच-सात सौ रुपये लाये और लेनेका आग्रह करने लगे। मैंने अपना कर्तव्य समझकर यह काम किया था कि कोई दुःखी है तो उसका दुःख दूर हो जाय, इसलिये मैंने रुपये नहीं लिये। मैंने मनमें सोचा कि अपने कर्तव्य-पालनकी बिक्री नहीं करूँगा। मेरे मनमें रुपये न लेनेसे बड़ा सन्तोष रहा। मैं वापस चला आया।

यह बात तो आपके दादाजीके समयकी थी। इसके बाद आपके पिताजीका राज्य आया। उनके राज्य-कालके पाँच-

सात वर्ष बीतनेपर एक बार मेरे व्यापारमें बड़ा घाटा लगा। धनकी तंगी हुई तो मेरे मनमें बात आने लगी कि उस समय इतना अच्छा अवसर मिला था, दस-पन्द्रह हजारका तो गहना ही था। अकेली स्त्री थी, एक थप्पड़ मारता तो सारा गहना, जेवर मिल जाता। आज यह दुःख नहीं भोगना पड़ता। उस समय बड़ी भूल हो गयी। अब पछतानेसे क्या हो। जब वे इनाम देने लगे, तब भी नहीं लिया। बड़ाईका भूखा आज तंगी भोगता है। इस प्रकारके भाव मनमें आये थे। महाराज! आप तो अवस्थामें मेरे पोतेके समान हैं, आपके सामने कहनेमें लज्जा आती है। अब तो मनमें ऐसे भाव आ रहे हैं कि उस समय उस स्त्रीको समझा-बुझाकर या धमकाकर अपनी स्त्री बना लेता, तो आज वह मेरी सेवा करती और धन भी मिल जाता। परन्तु, अब तो बात हाथसे निकल गयी, पछतानेसे क्या लाभ? इस तरह, महाराज! हम तो अपने मनके विचार बता सकते हैं। आप! राजाओंका निर्णय कौन करे। आपका निर्णय करनेकी ताकत हममें कहाँ!

राजा समझ गया कि बुड्ढा बड़ा बुद्धिमान् है। *'यथा राजा तथा प्रजा।'* यह बात भी कह दी और हमें रुष्ट भी नहीं किया। इस तरह सन्तोंकी पहचान हम नहीं कर सकते कि ये कहाँतक पहुँचे हुए हैं, किन्तु उनके पास जानेसे हमारे मनमें मच रही हलचल शान्त होती हो, बिना पूछे शंकाओंका समाधान होता हो, मनमें सन्तोष होता हो, अपनेमें दैवी सम्पदाके गुण आते हों अर्थात् दया, क्षमा, उदारता, त्याग, सन्तोष, नीति, धर्म आदिकी वृद्धि होती हो, दुर्गुण-दुराचार

दीखने लगें और घटने लगें। जिन महापुरुषोंके संग अथवा दर्शनोंसे ऐसी विलक्षणताएँ आती हों—तो हम अन्दाज लगा सकते हैं।

इसके अलावा हम गरीब हों अथवा धनी हों—जिनके मनमें हमारी कोई गरज नहीं दीखती। हम धनी हैं तो कुछ ज्यादा आदर करें और गरीब हैं तो निरादर करें, हमसे वे कुछ स्वार्थ सिद्ध करना चाहें—ऐसा हमें कभी लगता ही नहीं। हम उनसे ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदिकी बातें पूछते हैं तो वे उनसे भी आगेकी बातें बता देते हैं। हमारी दृष्टिमें सगुण-निर्गुण, साकार-निराकारके तत्त्वको जाननेवाला, उनसे बढ़कर कोई दीखता नहीं—ऐसे महापुरुषोंका संग मिल जाय तो बड़ा लाभ होता है।

५. आदर्श बहू

एक सेठ था। उसके सात बेटे थे। उन सातोंमें छःका विवाह हो चुका था। अब सातवें बेटेका विवाह हुआ। उसका विवाह जिस लड़कीसे हुआ, वह अच्छे समझदार माँ-बापकी बेटी थी। माँ-बापने उसको अच्छी शिक्षा दी हुई थी। उस घरमें सबका भाव अच्छा था। सात भाई होनेपर भी सभी एक साथ रहते थे। एक विलक्षण बात यह थी घरकी रसोई स्त्रियाँ ही बनाती थीं। कोई रसोइया नहीं था। स्त्रियाँ स्वयं रसोई बनाती हैं तो वे पति-पुत्र, सास-ससुर आदिको प्रेमसे भोजन कराती हैं। परन्तु रसोइया रसोई बनाता है तो वह मजदूरी करता है। दूसरा न खाये अथवा कम खाये तो सोचता

है कि रोटी थोड़ी बनानी पड़ेगी, आफत मिटी!

घरमें छः जेठानियाँ थीं और सुबह-शाम बारी-बारीसे रसोई बनाया करती थीं। हरेक जेठानीकी तीन दिनमें बारी आया करती थी। परन्तु उनमें खटपट रहती थी। कोई बीमार हो जाय तो दूसरी कहती कि मेरी बारीमें तूने रसोई नहीं बनायी, फिर तेरी बारीमें मैं क्यों बनाऊँ? छोटी बहू आयी तो उसके भीतर बहुत उत्साह था। वह एक दिन स्नान करके, शुद्ध वस्त्र पहनकर पहले ही रसोईमें जा बैठी। जेठानीने देखा तो कहा कि 'बहू! तू रसोई क्यों बनाती है? रसोई बनानेके लिये हम कम हैं क्या?' फिर भी छोटी बहूने बड़े प्रेमसे रसोई बनायी और सबको भोजन कराया। सब बड़े प्रसन्न हुए कि आज छोटी बहूने बहुत बढ़िया रसोई बनायी!

सभी भाइयोंके अलग-अलग कमरे थे। दिनमें सास छोटी बहूके कमरेमें गयी और उससे कहा कि 'बहू! तू सबसे छोटी है, इसलिये सब तेरेसे लाड़-प्यार रखते हैं। तू रसोई क्यों बनाती है? तेरी छः जेठानियाँ हैं।' छोटी बहू बोली—'माँजी! कोई भूखा अतिथि घर आ जाय तो उसको आप अन्न क्यों देते हो?' सास बोली—'बहू! इससे बड़ा पुण्य होता है। घरमें कोई भूखा आ जाय तो उसको भोजन कराना गृहस्थका खास धर्म है। उसको तृप्ति होती है, सुख मिलता है तो देनेवालेको पुण्य होता है।' छोटी बहू बोली—'दूसरोंको भोजन करानेसे पुण्य होता है तो क्या घरवालोंको भोजन करानेसे पाप होता है? मकान आपका, अन्न आपका, बर्तन आपके, सब चीजें आपकी हैं। मैं थोड़ी-सी मेहनत करके रसोई बनाकर

खिलाऊँ तो मेरा पुण्य होगा कि नहीं होगा? सब भोजन करके तृप्त होंगे, प्रसन्न होंगे तो इससे कितना लाभ होगा! इसलिये माँजी, आप रसोई मेरेको बनाने दो। मैं बैठी-बैठी करूँगी भी क्या? कुछ मेहनत करूँगी तो शरीर भी ठीक रहेगा, स्वास्थ्य ठीक रहेगा।' सासने ये बातें सुनीं तो मनको सोचा कि बहू बात ठीक कहती है! हम इसको सबसे छोटी समझते हैं, पर इसकी बुद्धि बहुत अच्छी है!

दूसरे दिन सुबह जल्दी ही सास रसोई बनाने बैठ गयी। बहुओंने देखा तो बोलीं—'माँजी! यह आप क्या करती हो? रसोई बनानेवाली बहुत हैं। आप परिश्रम क्यों करो?' सास बोली—'तुम्हारी अवस्था छोटी है, पर मेरी अवस्था बड़ी है। मेरेको जल्दी मरना है। मैं अभी पुण्य नहीं करूँगी तो फिर कब करूँगी?' बहुएँ बोलीं—'इसमें पुण्य क्या है? यह तो घरका काम है!' सास बोली—'घरका काम करनेसे पाप होता है क्या? जब भूखे व्यक्तियोंको, साधुओंको, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे पुण्य होता है तो क्या घरवालोंको भोजन करानेसे पाप होता है? उल्टे इसका तो व्यक्तिगत पुण्य होता है। घरकी चीज सब घरवालोंकी होती है, इसलिये दान-पुण्य करनेसे सबको पुण्य होता है। परन्तु खुद मेहनत करके रसोई बनायी जाय तो अकेले रसोई बनानेवालेको पुण्य होता है। हम बड़े-बूढ़े अभी पुण्य नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे?' सासकी बातें सुनकर सब बहुओंके भीतर उत्साह हुआ कि इस बातका हमने ख्याल ही नहीं किया कि घरका काम करनेसे, भोजन बनाकर सबको खिलानेसे भी पुण्य होता है!

यह युक्ति बहुत बढ़िया है! अब जो बहू पहले जग जाय, वही पहले रसोई बनाने बैठ जाय। आपसमें खटपट होने लगी। एक कहती कि रसोई मैं बनाऊँगी, दूसरी कहती कि मैं बनाऊँगी! सेठके पास यह बात पहुँची तो उसने कहा कि सब अपनी बारी बाँध लो और अपनी-अपनी बारीमें रसोई बनाओ।

पहले जब 'रसोई तू बना, तू बना'—यह भाव था, तब छः बारी बँधी थी। अब 'मैं बनाऊँ, मैं बनाऊँ'—यह भाव हुआ तो आठ बारी बँध गयी। दो और बढ़ गये—सास और छोटी बहू। काम करनेमें 'तू कर, तू कर'—इससे काम बढ़ जाता है और आदमी कम हो जाते हैं, पर 'मैं करूँ, मैं करूँ'—इससे काम हल्का हो जाता है और आदमी बढ़ जाते हैं। धनी आदमी घरके काम-धंधेके लिये नौकर रखते हैं। नौकर कोई साधु-संन्यासी थोड़े ही होता है! उसका भी अपना कुटुम्ब होता है। वह अपने घरका भी काम करता है और आपके घरका भी काम करके पैसे ले जाता है। परन्तु आप अपने घरका भी काम नहीं कर सकते और बड़े कहलाते हो! आप बड़े हुए कि नौकर बड़ा हुआ?

छोटी बहूने सोचा कि अब तो चौथे दिन बारी आती है, क्या किया जाय? घरमें आटा पीसनेकी पुरानी चक्की पड़ी थी। वह उसको अपने कमरेमें ले आयी और आटा पीसना शुरू कर दिया। मशीनकी चक्कीका आटा गरम होता है और गरम-गरम ही बोरीमें भर देनेसे जल जाता है, जिससे उसकी रोटी स्वादिष्ट नहीं होती। परन्तु हाथसे पीसा गया आटा ठण्डा

होता है और उसकी रोटी स्वादिष्ट होती है। छोटी बहूने हाथसे आटा पीसकर उसीसे रोटी बनायी तो सब कहने लगे कि आज तो फुलकेका जायका बड़ा विलक्षण है!

सासने छोटी बहूके पास जाकर कहा कि 'बहू! तू आटा क्यों पीसती है? अपने पास पैसोंकी कमी नहीं है। भगवान्‌ने बहुत दिया है!' बहूने कहा—'माँजी! भले ही पैसा बहुत हो, पर आटा तो रोजाना मैं ही पीसूँगी। हाथसे आटा पीसनेसे शरीर ठीक रहता है। व्यायाम स्वतः हो जाता है। बीमारी नहीं आती। वैद्यों-डाक्टरोंके चक्कर नहीं काटने पड़ते। दूसरी बात, रसोई बनानेसे भी ज्यादा पुण्य आटा पीसनेका है। रसोई चाहे कोई बनाये, आटा तो मेरा पीसा हुआ ही सब खायेंगे!' सासने और जेठानियोंने ये बातें सुनीं तो विचार किया कि छोटी बहू ठीक बात कहती है। उन्होंने अपने-अपने पतियोंसे कहा कि घरमें चक्की ले आओ, हम सब आटा पीसेंगी। सब चक्की ले आये। सभी चक्कीमें रोजाना दो-ढाई सेर आटा पीसने लगीं। आटा अधिक हो गया। अब अधिक आटेका क्या करें? छोटी बहूने कहा कि अपनी दूकानमें आटेकी बिक्री कर दो। छोटी बहूकी बात सबने मान ली कि यह जो कहती है, ठीक कहती है।

अब छोटी बहू विचार करने लगी कि आटा पीसनेका काम तो मेरे हाथसे गया, अब क्या करूँ? घरमें कुआँ था। रोजाना सुबह एक नौकर पानी भरनेके लिये आता था। छोटी बहूने सुबह जल्दी उठकर स्नान करके कुएँसे सब पानी भर दिया। नौकर आया तो उसने देखा कि सब बर्तनोंमें पानी

भरा हुआ है। वह बैठ गया। सेठ आया तो बोला कि 'बैठा क्यों है? पानी क्यों नहीं भरता?' नौकर बोला—'आप देखो; सब पानी पहलेसे ही भरा हुआ है, मैं क्या करूँ?' सेठ बोला कि पता लगाओ, पानी किसने भरा? सासने छोटी बहूके पास जाकर कहा—'बहू! पानी तूने भरा?' बहू बोली—'माँजी! आप चुप रहो, बोलो मत! आपके बोलनेसे मेरी कमाई चली जाती है! आपने वैशाख-माहात्म्य सुना है कि नहीं? वैशाखके महीनेमें पानी पिलानेका बड़ा माहात्म्य है। पानी पिलानेका जितना पुण्य है, उतना अन्न देनेका नहीं है; क्योंकि अन्न तो दिनमें एक-दो बार खाते हैं, पर पानी दिनमें कई बार पीते हैं। पानीसे स्नान करते हैं, कुल्ला करते हैं, हाथ-पैर धोते हैं। पानी ज्यादा काममें आता है।'

दूसरे दिन सास जल्दी उठकर कुएँपर चली गयी और पानी खींचने लगी। दूसरी बहुओंने देखा तो बोलीं—'माँजी! यह आप क्या करती हो? लोगोंमें हमारा मुँह काला होगा कि घरमें इतनी बहुएँ बैठी हैं और सास पानी भरती है!' सास बोली—'बूढ़ोंको तो जल्दी मरना है, इसलिये उनको पहले काम करके पुण्य कमाना चाहिये। तुमलोग तो पीछे भी कर लोगी।' अब सब बहुओंने भी पानी भरना शुरू कर दिया। सेठने देखा तो कहा कि 'नौकर निकम्मा बैठा है, इसको छुट्टी दे दो।' यह बात छोटी बहूने सुनी तो वह सासके पास गयी और बोली—'मेरी प्रार्थना सुनो, पिताजीसे कहो कि नौकरको छुट्टी न दें। यह गृहस्थी आदमी है। बेचारेकी कमाई होती है। इसको छुट्टी न देकर दूसरे काममें लगा

दें।' इस बातका सासपर असर पड़ा कि छोटी बहूका कितना अच्छा भाव है! यह कितनी समझदार है!

अब छोटी बहूने विचार किया कि रसोई भी सब बनाने लगीं, आटा भी सब पीसने लगीं, पानी भी सब भरने लगीं, अब मैं क्या करूँ? घरमें जूठे बर्तन माँजनेके लिये एक नौकरानी आया करती थी। छोटी बहू राख लेकर कोनेमें बैठ गयी और अपने सब बर्तन माँज दिये। नौकरानी दूर बैठी थी। सासने देखा तो बोली—'बहू! विचार तो कर। बर्तन माँजनेसे तेरा गहना घिस जायगा, कपड़े खराब हो जायँगे, फायदा क्या होगा?' छोटी बहू बोली—'माँजी! ऐसी बात नहीं है। आप चुप रहो!' सास बोली—'बता तो सही, क्या बात है?' बहू बोली—'माँजी! जूठन उठानेका बड़ा माहात्म्य है। आपने महाभारतमें कथा नहीं सुनी? पाण्डवोंने यज्ञ किया तो सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णका पूजन हुआ। उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने सबकी जूठी पत्तलें उठानेका काम किया। जितना छोटा काम होता है, उतना ही उसको करनेका ज्यादा माहात्म्य होता है। अगर जूठन उठानेका ज्यादा माहात्म्य नहीं होता तो भगवान् यह काम क्यों करते?'

दूसरे दिन सास बर्तन माँजनेके लिये बैठ गयी तो छोटी बहूने कहा—'माँजी! मेरी बात सुनो। इस थाली-कटोरी-गिलासपर तो मेरा हक लगता है; क्योंकि ये मेरे पतिदेवके हैं। अतः इनको मैं माँजूँगी।' सास बोली—'जा, तेरा पति पीछे है, मेरा बेटा पहले है, इसलिये मैं माँजूँगी।' इस तरह बर्तन माँजनेके लिये खटपट होने लगी। आखिर सब बहुओंने

बर्तन माँजने शुरू कर दिये।

छोटी बहू विचार करने लगी कि अब मैं क्या काम करूँ? सुबह रोजाना झाड़ू लगानेके लिये नौकर आया करता था। छोटी बहूने सुबह जल्दी उठकर सब जगह झाड़ू लगा दिया। नौकरने आकर देखा कि सब जगह झाड़ू लगा हुआ है तो वह बैठ गया। सास छोटी बहूके पास गयी और बोली कि 'झाड़ू तूने लगाया है क्या?' छोटी बहू बोली—'माँजी! आप चुप रहो, बोलो मत। आप बोलती हो तो मेरे हाथसे काम चला जाता है!' सासने कहा—'झाड़ू देनेका काम तो नौकरका है, तू झाड़ू क्यों देती है?' छोटी बहूने कहा—'माँजी! आपने रामायण नहीं सुनी क्या? वनमें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि रहते थे, पर भगवान् उनकी कुटियामें न जाकर पहले शबरीकी कुटियामें गये। कारण क्या था? शबरी रोजाना रातमें झाड़ू देती थी, पम्पासरका रास्ता साफ करती थी, जिससे ऋषि-मुनियोंके पैरमें कँकड़ न चुभें। इसलिये इस सेवाका बड़ा माहात्म्य है।' सासने देखा कि यह छोटी बहू सबको लूट लेगी! यह सबका पुण्य अकेले ले लेती है। अब सासने और सब बहुओंने झाड़ू लगाना शुरू कर दिया।

जिस घरमें सबका आपसमें प्रेम होता है, वहाँ लक्ष्मी बढ़ती है। जिस घरमें कलह होता है, वहाँ निर्धनता आ जाती है।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

(मानस, सुन्दर० ४०। ३)

सेठकी दूकानमें अधिक धन पैदा होने लगा। सेठने सोचा

कि स्त्रियोंके पास भी अधिक धन आना चाहिये। उसने घरकी सब स्त्रियोंके लिये गहने बनवा दिये। गहना स्त्रियोंका धन होता है, जिसमें पतिका भी हक नहीं लगता। अब छोटी बहू ससुरसे मिले गहने लेकर बड़ी जेठानीके पास गयी और बोली कि 'आपके लड़का-लड़की है। उनका विवाह करोगी तो गहना बनवाना पड़ेगा। मेरे तो अभी कोई लड़का-लड़की है नहीं। इसलिये इन गहनोंका मैं क्या करूँगी? मेरे माता-पिताने मेरेको खूब गहने दिये हैं, वे सब मेरे पास तिजोरीमें पड़े हैं।' सासने देखा तो छोटी बहूके पास जाकर बोली—'बहू! यह तुम क्या करती हो? तेरे ससुरने सबको गहने दिये हैं।' छोटी बहू बोली—'माँजी! आप चुप रहा करो। आपको कोई बात कहना तो गाँवमें हल्ला करना है! काम-धंधा करनेसे पुण्य होता है तो क्या दान करनेसे पाप होता है? वस्तु देनेका तो बड़ा पुण्य होता है!' सासको बहूकी बात लग गयी। वह सेठके पास गयी और बोली—'आपके नौकरोंको मैं धोती-साड़ी दूँगी।' सेठ बहुत राजी हुआ कि पहले नौकरोंको कुछ देते थे तो यह लड़ पड़ती थी, पर अब कहती है कि मैं दूँगी! अब सास भी दूसरोंको वस्तुएँ देने लगी, बहुएँ भी वस्तुएँ देने लगीं। घरमें वस्तुएँ हो गयीं ज्यादा और आदमी हो गये कम! पुण्यके दो ही काम हैं—काम-धंधा खुद करना और वस्तुएँ दूसरोंको देना। ये दो काम होने लगें तो घरमें खटपट मिट जाय, शान्ति हो जाय। दूसरे लोग भी सोचते हैं कि कन्या देनी हो तो ऐसे घरमें दो, जिससे वह सुख पाये। कन्या लेनी भी हो तो ऐसे घरकी लो, जिसमें

हमारे घरमें भी सुख-शान्ति रहे। साधु भी ऐसे घरोंकी भिक्षा लेना चाहते हैं।

गीताने कहा है—

> यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
> स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
>
> (३।२१)

'श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, दूसरे मनुष्य उसीके अनुसार आचरण करते हैं।'

इस श्लोकमें श्रेष्ठ मनुष्यके आचरणके लिये तो पाँच पद आये हैं—'यत्'-'यत्', 'तत्'-'तत्' तथा 'एव', पर प्रमाण (वचन) के लिये केवल दो पद आये हैं—'यत्' और 'तत्'। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि समाजपर मनुष्यके आचरणोंका असर पाँच गुना पड़ता है और वचनोंका असर दो गुना पड़ता है। छोटी बहूने आचरण किया, केवल व्याख्यान नहीं दिया। इसलिये उसका असर पूरे घरपर पड़ा, जिससे पूरे घरका सुधार हो गया। इतना ही नहीं, पड़ोसियोंपर भी उसका अच्छा असर पड़ा, जिससे उनके घर भी सुधर गये। एक घरका सुधार होनेसे अनेक घरोंका सुधार हो गया!

६. सास-बहूकी लड़ाई मिटानेवाला विलक्षण ताबीज

एक महात्मा थे। वे पैदल घूम-घूमकर सत्संगका प्रचार किया करते थे। वे एक गाँवमें जाते, कुछ दिन ठहरकर सत्संग करते और फिर वहाँसे दूसरे गाँव चल देते। लोग भी उनपर बड़ी श्रद्धा रखते थे और उनकी बात मानते थे। घूमते-घूमते वे एक गाँवमें पहुँचे। गाँवमें सब जगह प्रचार हो गया कि महाराजजी पधारे हैं, आज अमुक जगह सत्संग होगा। सत्संगके समय बहुत-से भाई-बहन इकट्ठे हुए। जब सत्संग पूरा हुआ, तब एक माताजी महाराजजीके पास जाकर बोलीं—'महाराजजी! आप अमुक गाँवमें जाया करते हो!'

महाराजजी—'हाँ माई, जाया करता हूँ।'

माताजी—'वहाँ आपका अमुक सेवक है। आप उनके घर भी जाया करते हो!'

महाराजजी—'हाँ, जाया करता हूँ।'

माताजी—'यह मेरी बहू उसीकी बेटी है। यह मेरेसे लड़ती है! मेरा कहना नहीं मानती है!'

लोगोंमें महाराजजीका एक भय था। कोई गड़बड़ी करता तो कहते कि हम महाराजजीसे कह देंगे। वह कहता कि भाई, महाराजजीको मत कहना, तुम जैसा कहोगे, वैसा हम करेंगे। महाराजजी कोई राजाकी तरह दण्ड नहीं देते थे। वे बड़े प्रेमसे कहते थे कि भाई, तुम ऐसा क्यों करते हो? लोग उनकी बातका आदर करते थे। प्रेमका जो शासन होता है, वह बड़ा विलक्षण होता है। राजाका शासन तो राजसी-तामसी होता है, पर संतोंका शासन सात्त्विक होता है।

महाराजजीने उस माताजीकी बहूको बुलाया और उससे कहा कि 'बेटी! तू साससे क्यों लड़ती है?' महाराजजीने ऐसा कहा तो उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू बहने लग गये! वह जब छोटी बच्ची थी, तब वह महाराजजीके सामने खेला करती थी। अब बड़ी हो गयी, विवाह हो गया तो ससुरालमें आ गयी। उसके मनमें महाराजजीके प्रति बाप-दादेकी तरह पूज्यभाव था। अब उसने महाराजजीके सामने अपनी शिकायत सुनी तो वह घबरा गयी और रोने लग गयी। महाराजजीने आश्वासन दिया तो वह बोली—'महाराजजी! मैंने कोई कसूर तो किया नहीं। मैं सासको दुःख नहीं देती हूँ, फिर भी उनको मेरा काम पसन्द नहीं आता। मैं क्या करूँ? सास बिना कारण मेरेसे लड़ती है!'

बहू तो कहती है कि सास लड़ती है और सास कहती है कि बहू लड़ती है! लड़ाई कम-से-कम दो आदमियोंमें होती है। अकेलेमें लड़ाई नहीं होती। सैकड़ों-हजारों आदमी मिलकर लड़ाई कर सकते हैं, पर अकेला आदमी लड़ाई नहीं कर सकता। दो आदमी लड़ते हैं तो एक कहता है कि वह लड़ाई करता है और दूसरा कहता है कि वह लड़ाई करता है। अपना अवगुण अपनेको नहीं दीखता।

महाराजजीने कहा—'बेटी! तू घबरा मत। मैं एक ऐसा यन्त्र बनाकर देता हूँ, जिससे लड़ाई मिट जायगी।' वहाँ उसका देवर खड़ा था। उसको महाराजजीने कागज, कलम, दवात और एक ताबीज लानेके लिये कहा। वह जाकर चारों

चीजें ले आया। महाराजजीने कागजके एक टुकड़ेपर कुछ

लिख दिया और उसको समेटकर ताबीजमें बन्द कर दिया।

महाराजजी—'बेटी! यह ताबीज तू बाँध ले। तेरे घरकी लड़ाई मिट जायगी। परन्तु इसके साथ तेरेको मेरी बात माननी पड़ेगी।'

बहू—'हाँ महाराजजी! आप जैसा कहोगे, वैसा ही करूँगी।'

महाराजजी—'दो बातें हैं। एक तो सास कोई बात कहे तो सामने मत बोलना और दूसरा, सास जो काम कहे, चट उठकर कर देना। इन दो बातोंका तू पालन कर लेगी तो यह यन्त्र सिद्ध हो जायगा।'

बहू—'महाराजजी! कितना दिन करना पड़ेगा?'

महाराजजी—'कम-से-कम बारह महीने पालन कर लिया तो सब काम ठीक हो जायगा। पर बीचमें कभी भूल हो गयी तो उसी दिनसे फिर बारह महीने गिने जायँगे। उससे पहले जो दिन बीते, वे गिनतीमें नहीं आयेंगे।'

बहू—'ठीक है, आप जैसा कहते हैं, वैसा ही करूँगी।'

बहूने ताबीज लेकर बाँध लिया। महाराजजीने चार-पाँच दिन और सत्संग किया, फिर दूसरे गाँवमें चले गये। उनका कोई नियम नहीं था कि इतने ही दिन यहाँ रुकेंगे। हमारे यहाँ पहले ऐसे सन्तोंकी परम्परा चलती थी और लोगोंपर उनका धार्मिक शासन चलता था। उनके शासनसे लोग प्रभावित होते थे। लोग उन सन्तोंको बड़े पूज्यभावसे देखते थे और उनकी आज्ञाका पालन करते थे। इससे गाँवोंमें बड़ी शान्ति रहती थी।

बहू महाराजजीके बताये नियमोंका पालन करने लगी। सास कोई काम कहती तो वह चट हाथ जोड़कर हाजिर हो जाती थी और सामने नहीं बोलती थी। सासने मनमें विचार किया कि महाराजजीका यन्त्र बड़ा विलक्षण है! देखो, एक दिनमें ही बहू सुधर गयी! घरमें बड़ी शान्ति हो गयी। घरवाले भी सब राजी हो गये। सास-बहू आपसमें प्रेमसे रहने लगीं। बहू आज्ञा माने तो वह सासको बेटीसे भी अधिक प्यारी लगती है; क्योंकि बेटी तो थोड़े दिन घरपर रहती है, फिर अपने घर चली जाती है, पर बहू तो सदा ही पासमें रहती है। खटपट तो तब होती है, जब वह सासके सामने बोल दे और उसका कहना नहीं करे।

कुछ दिनोंके बाद महाराजजी फिर आये तो उन्होंने पूछा—'माताजी! ठीक है न?' वह बोली—'महाराजजी! आपकी कृपासे बहुत ठीक है! बहू सुधर गयी है।' बहूसे पूछा तो वह बोली—'महाराजजी! एक दिन मेरेसे गलती हो गयी, मैं सासके सामने बोल गयी!' महाराजजीने कहा—'बेटी! उसी दिनसे बारह महीने गिने जायँगे, पहलेवाले दिन गिनतीमें नहीं आयेंगे। एकादशीके दिन अन्नका एक दाना भी खा ले तो व्रत भंग हो जाता है!' बहू बोली—'ठीक है महाराजजी! अब मैं ध्यान रखूँगी।' इस तरह डेढ़-दो वर्षोंमें उसके बारह महीने पूरे हो गये। सास-बहूमें परस्पर बड़ा प्रेम हो गया।

दो-ढाई वर्ष बीतनेपर महाराजजी फिर उस गाँवमें आये और उनसे बोले कि 'एक दिन हम तुम्हारे घर भिक्षा करेंगे।' वे बहुत राजी हुए। महाराजजी बड़े त्यागी सन्त थे।

वे दो-चार घरोंसे भिक्षा लेकर खाते थे। कपड़े फट जाते थे तो कोई ज्यादा आग्रह करता तो कपड़ा ले लेते थे। रुपयों-पैसोंका कोई काम ही नहीं था। जब वे उनके घर भिक्षाके लिये गये तो बहुत-से लोग इकट्ठा हो गये कि महाराजजी आये हैं, सत्संग सुनायेंगे। महाराजजीने भिक्षा की और सत्संग सुनाया। फिर कहा कि 'दूसरे घरोंके जो लोग आये हैं, उनको भेज दो। केवल आपके घरवाले ही रहें, आपसे एक बात कहनी है।' घरवालोंने हाथ जोड़कर सबसे कह दिया कि 'भाई, अब सत्संग हो गया, अब आप सब लोग जाओ।' सब लोग चले गये। घरवाले महाराजजीके पास आकर बैठ गये।

महाराजजी बोले कि 'मैंने जो ताबीज बनाकर दी थी, उसको लाओ।' उन्होंने ताबीज लाकर महाराजजीके सामने रख दी। महाराजजीने कहा कि 'इसको खोलकर पढ़ो, इसमें क्या लिखा है?' उन्होंने ताबीजके भीतर रखा कागज खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

'सास-बहू राजी तो साधुको क्या और सास-बहू नाराज तो साधुको क्या!'

महाराजजी बोले—'सास-बहू शान्तिसे रहें तो हमें क्या मतलब और रोजाना आपसमें लड़ें तो हमें क्या मतलब? हमारा मतलब तो यह है कि तुम्हारे घरमें शान्ति, आनन्द रहे। यह शक्ति यन्त्रमें नहीं है। यह शक्ति इस बातमें है कि सामने न बोले और जैसा कहे, वैसा कर दे। देखो, दूसरा कोई जन्तर-मन्तरकी बात कहे कि हमें देवता सिद्ध है, हम

तुम्हारेको ऐसा कर देंगे, वैसा कर देंगे तो डरना नहीं! इसीलिये तुमको यन्त्र खोलकर दिखाया है। जन्तर-मन्तरको मैं नहीं मानता। परन्तु तुम्हारेको मेरी बातपर विश्वास हो जाय, इसलिये यन्त्र बनाकर दिया है। बड़ोंके सामने बोलना नहीं और उनकी आज्ञाका पालन करना—इन दो बातोंका घरके सभी लोग पालन करें तो आपके लोक और परलोक दोनों सुधर जायँगे। कभी सास कोई ऐसा काम करनेको कह दे, जिससे आगे नुकसान दीखता हो तो हाथ जोड़कर खड़ी हो जाय। वह पूछे कि खड़ी क्यों है, तो कहे कि आपका काम तो मैं कर दूँगी, पर इससे बिगाड़ हो जायगा। वह कहे कि 'नहीं-नहीं, यह काम करना है' तो वैसा कर दे। अगर काम बिगड़ जाय तो शेखी न बघारे कि देखो, मैंने तो पहले ही कह दिया था, पर आपने माना नहीं! प्रत्युत बड़ी नम्रता, सरलता, निरभिमानता रखे।' महाराजजीकी इन बातोंका सबपर बड़ा असर पड़ा।

सब भाई-बहनोंसे प्रार्थना है कि आपलोग भी आज इस विलक्षण यन्त्रको धारण कर लें कि बड़ोंके सामने नहीं बोलेंगे, उनका तिरस्कार, अपमान, अवहेलना नहीं करेंगे और वे जैसा कहेंगे, वैसा कर देंगे। फिर आपके घरोंमें भी शान्ति, आनन्द हो जायगा।

७. सेठको शिक्षा

एक बहुत धनी सेठ था। वह सुबह जल्दी उठकर नदीमें स्नान करके घर आकर नित्य-नियम करता था। ऐसे वह रोजाना नहाने नदीपर आता था। एक बार एक अच्छे संत विचरते हुए वहाँ घाटपर आ गये। उन्होंने कहा—'सेठ! राम-राम!' वह बोला नहीं तो बोले—'सेठ! राम-राम!' ऐसे दो-तीन बार बोलनेपर भी सेठ 'राम-राम' नहीं बोला। सेठने समझा कि कोई मँगता है। इसलिये कहने लगा—'हट! हट! चल, हट यहाँसे।' संतने देखा कि अभिमान बहुत बढ़ गया है, भगवान्‌का नाम भी नहीं लेता। मैं तो भगवान्‌का नाम लेता हूँ और यह हट-हट कहता है।

इन धनी आदमियोंके वहम रहता है कि हमारेसे कोई कुछ माँग लेगा, कुछ ले लेगा। इसलिये धनी लोग सबसे डरते रहते हैं। वे गरीबसे, साधुसे, ब्राह्मणसे, राज्यसे, चोरोंसे, डाकुओंसे डरते हैं। अपने बेटा-पोता ज्यादा हो जायेंगे तो धनका बँटवारा हो जायगा—ऐसे भी डर लगता है उन्हें।

संतने सोचा कि इसे ठीक करना है। तो वे वैसे ही सेठ बन गये और सेठ बनकर घरपर चले गये। दरवानने कहा कि 'आज आप जल्दी कैसे आ गये?' तो उन्होंने कहा कि 'एक बहुरूपिया मेरा रूप धरके वहाँ आ गया था, मैंने समझा कि वह घरपर जाकर कोई गड़बड़ी नहीं कर दे। इसलिये मैं जल्दी आ गया। तुम सावधानी रखना, वह आ जाय तो उसे भीतर मत आने देना।'

सेठ घरपर जैसा नित्य-नियम करता था, वैसे ही वे सेठ बने हुए संत भजन-पाठ करने लग गये। अब वह सेठ

सदाकी तरह धोती और लोटा लिये आया तो दरवानने रोक दिया। 'कहाँ जाते हो? हटो यहाँसे!' सेठ बोला—'तूने भाँग पी ली है क्या? नशा आ गया है क्या? क्या बात है? तू नौकर है मेरा, और मालिक बनता है।' दरवानने कहा—'हट यहाँसे, नहीं जाने दूँगा भीतर।' सेठने छोरोंको आवाज दी—'आज इसको क्या हो गया?' तो उन्होंने कहा—'बाहर जाओ, भीतर मत आना।' बेटे भी ऐसे ही कहने लगे। जिसको पूछे, वे ही धक्का दें। सेठने देखा कि क्या तमाशा हुआ भाई? मुझे दरवाजेके भीतर भी नहीं जाने देते हैं। बेचारा इधर-उधर घूमने लगा।

अब क्या करें? उसकी कहीं चली नहीं तो उसने राज्यमें जाकर रिपोर्ट दी कि इस तरह आफत आ गयी। वे सेठ राज्यके बड़े मान्य आदमी थे। राजाने उनको जब इस हालतमें देखा तो कहा—'आज क्या बात है? लोटा, धोती लिये कैसे आये हो?' तो वह बोला—'कैसे-कैसे क्या, महाराज! मेरे घरमें कोई बहुरूपिया बनकर घुस गया और मुझे निकाल दिया बाहर।' राजाने कहा—'चार घोड़ोंकी बग्घीमें आया करते थे, आज आपकी यह दशा!' राजाने अपने आदमियोंसे पूछा—'कौन है वह? जाकर मालूम करो।' घरपर खबर गयी तो घरवालोंने कहा कि 'अच्छा! वह राज्यमें पहुँच गया! बिलकुल नकली आदमी है वह। हमारे सेठ तो भीतर विराजमान हैं। राजाको जाकर कहा कि वह तो घरमें अच्छी तरहसे विराजमान है। राजाने कहा—'सेठको कहो कि राजा बुलाते हैं।' अब सेठ चार घोड़ोंकी बग्घी लगाकर ठाट-

बाटसे जैसे जाते थे, वैसे ही पहुँचे और बोले—'अन्नदाता! क्यों याद फरमाया, क्या बात है?'

राजाजी बड़े चकराये कि दोनों एक-से दीख रहे हैं। पता कैसे लगे? मंत्रियोंसे पूछा तो वे बोले—'साहब, असली सेठका कुछ पता नहीं लगता।' तब राजाने पूछा—'आप दोनोंमें असली और नकली कौन हैं?' तो कहा—'परीक्षा कर लो।' जो सन्त सेठ बने हुए थे उन्होंने कहा—'बही लाओ। बहीमें जो लिखा हुआ है, वह हम बता देंगे।' बही मँगायी गयी। जो सेठ बने हुए संत थे, उन्होंने बिना देखे ही कह दिया कि अमुक-अमुक वर्षमें अमुक मकानमें इतना खर्चा लगा, इतना घी लगा, अमुकके ब्याहमें इतना खर्चा हुआ। वह हिसाब अमुक बहीमें, अमुक जगह लिखा हुआ है।' वह सब-का-सब मिल गया। सेठ बेचारा देखता ही रह गया। उसको इतना याद नहीं था। इससे यह सिद्ध हो गया कि वह सेठ नकली है। तो कहा कि—'इसे दण्ड दो।' पर संतके कहनेसे छोड़ दिया।

दूसरे दिन फिर वह धोती और लोटा लेकर गया। वहाँ वही संत बैठे थे। उस सेठको देखकर संतने कहा—'राम-राम!' तब उसकी आँख खुली कि यह सब इन संतका चमत्कार है। संतने कहा—'तुम भगवान्‌का नाम लिया करो, हरेकका तिरस्कार, अपमान मत किया करो। जाओ, अब तुम अपने घर जाओ।' वह सेठ सदाकी तरह चुपचाप अपने घर आ गये।

८. पापका बाप

एक पण्डितजी काशीसे पढ़कर आये। ब्याह हुआ, स्त्री आयी। कई दिन हो गये। एक दिन स्त्रीने प्रश्न पूछा कि 'पण्डितजी महाराज! यह तो बताओ कि पापका बाप कौन है?' पण्डितजी पोथी देखते रहे, पर पता नहीं लगा, उत्तर नहीं दे सके। अब बड़ी शर्म आयी कि स्त्री पूछती है पापका बाप कौन है? हमने इतनी पढ़ाई की, पर पता नहीं लगा। वे वापस काशी जाने लगे। मार्गमें ही एक वेश्या रहती थी। उसने सुन रखा था कि पण्डितजी काशी पढ़कर आये हैं। उसने पूछा—'कहाँ जा रहे हैं महाराज?' तो बोले—'मैं काशी जा रहा हूँ।' काशी क्यों जा रहे हैं? आप तो पढ़कर आये हैं? तो बोले—'क्या करूँ? मेरे घरमें स्त्रीने यह प्रश्न पूछ लिया कि पापका बाप कौन है? मेरेको उत्तर देना आया नहीं। अब पढ़ाई करके देखूँगा कि पापका बाप कौन है?' वह वेश्या बोली—'आप वहाँ क्यों जाते हो? यह तो मैं यहीं बता सकती हूँ आपको।'

बहुत अच्छी बात। इतनी दूर जाना ही नहीं पड़ेगा। 'आप घरपर पधारो। आपको पापका बाप मैं बताऊँगी।' अमावस्याके एक दिन पहले पण्डितजी महाराजको अपने घर बुलाया। सौ रुपया सामने भेंट दे दिये और कहा कि 'महाराज! आप मेरे यहाँ कल भोजन करो।' पण्डितजीने कह दिया—'क्या हर्ज है, कर लेंगे!' पण्डितजीके लिये रसोई बनानेका सब सामान तैयार कर दिया। अब पण्डितजी महाराज पधार गये और रसोई बनाने लगे तो वह बोली—'देखो, पक्की रसोई तो आप पाते

ही हो, कच्ची रसोई हरेकके हाथकी नहीं पाते। पक्की रसोई

मैं बना दूँ, आप पा लेना!' ऐसा कहकर सौ रुपये पासमें और रख दिये। उन्होंने देखा कि पक्की रसोई हम दूसरोंके हाथकी लेते ही हैं, कोई हर्ज नहीं, ऐसा करके स्वीकार कर लिया।

अब रसोई बनाकर पण्डितजीको परोस दिया। सौ रुपये और पण्डितजी महाराजके आगे रख दिये और नमस्कार करके बोली—'महाराज! जब मेरे हाथसे बनी रसोई आप पा रहे हैं तो मैं अपने हाथसे ग्रास दे दूँ। हाथ तो वे ही हैं, जिनसे रसोई बनायी है, ऐसी कृपा करो।' पण्डितजी तैयार हो गये उसकी बातपर। उसने ग्रासको मुँहके सामने किया और उन्होंने ज्यों ही ग्रास लेनेके लिये मुँह खोला कि उठाकर मारी थप्पड़ जोरसे, और वह बोली—'अभीतक आपको ज्ञान नहीं हुआ? खबरदार! जो मेरे घरका अन्न खाया तो! आप-जैसे पण्डितका मैं धर्म-भ्रष्ट करना नहीं चाहती। यह तो मैंने पापका बाप कौन है, इसका ज्ञान कराया है।' रुपये ज्यों-ज्यों आगे रखते गये पण्डितजी ढीले होते गये।

इससे सिद्ध क्या हुआ? पापका बाप कौन हुआ? रुपयोंका लोभ! **'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः'** (गीता १६। २१)। काम, क्रोध और लोभ—ये नरकके खास दरवाजे हैं।

पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

(मानस, लंकाकाण्ड ७८। १)

दूसरोंको उपदेश देनेमें तो लोग कुशल होते हैं, परंतु उपदेशके अनुसार ही खुद आचरण करनेवाले बहुत ही कम लोग होते हैं।

मनुष्य खयाल नहीं करता कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। औरोंको समझाते हुए पण्डित बन जाते हैं। अपना काम जब सामने आता है, तब पण्डिताई

भूल जाते हैं, वह याद नहीं रहती।

परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति हि।
विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते॥

दूसरोंको उपदेश देते समय जो पण्डिताई होती है, वही अगर अपने काम पड़े, उस समय आ जाय तो आदमी निहाल हो जाय। जाननेकी कमी नहीं है, काममें लानेकी कमी है।

९. शुद्ध हरिकथा

महाराष्ट्रमें समर्थ गुरु रामदास बाबा एक बहुत विचित्र संत हुए हैं। इनके सम्बन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है। ये हनुमान्‌जीके भक्त थे और इनको हनुमान्‌जीके दर्शन हुआ करते थे। एक बार बाबाजीने हनुमान्‌जीसे कहा कि 'महाराज! आप एक दिन सब लोगोंको दर्शन दें।' हनुमान्‌जीने कहा कि 'तुम लोगोंको इकट्ठा करो तो मैं दर्शन दे दूँगा।' बाबाजी बोले कि 'लोगोंको तो मैं हरिकथासे इकट्ठा कर लूँगा।' हनुमान्‌जीने कहा कि 'शुद्ध हरिकथा करना।' हरिकथासे लोग आते हैं, 'शुद्ध हरिकथासे मैं आ जाऊँगा।' बाबाजी बोले कि 'शुद्ध हरिकथा ही करूँगा।'

संत तथा राजगुरु होनेके कारण बाबाजीका ऐसा प्रभाव था कि वे जहाँ जाते, वहीं हजारोंकी संख्यामें लोग इकट्ठे हो जाते। उन्होंने एक शहरमें जाकर कहा कि आज रात शहरके बाहर अमुक मैदानमें हरिकथा होगी। समाचार सुनते ही हरिकथाकी तैयारी प्रारम्भ हो गयी। प्रकाशकी व्यवस्था की गयी, दरियाँ बिछायी गयीं। समयपर बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये। सब गाने-बजानेवाले आकर बैठ गये और कीर्तन प्रारम्भ हो गया। बीच-

बीचमें बाबाजी भगवान्‌की कथा कह देते और फिर कीर्तन करने लगते। ऐसा करते-करते वे केवल कीर्तनमें ही मस्त हो गये। लोगोंको यह आशा थी कि अब बाबाजी कथा सुनायेंगे, पर वे तो कीर्तन ही करते चले गये। लोगोंके भीतर असली भाव तो था नहीं; अतः 'यह कीर्तन तो हम घरपर ही कर लिया करते हैं; यहाँ कबतक बैठे रहेंगे!' ऐसा कहकर वे धीरे-धीरे उठकर जाने लगे। वास्तवमें वे घरपर कीर्तन करते नहीं थे। घरमें कीर्तन करनेकी बात तो वहाँसे उठनेका एक बहाना था। बाबाजीके पासमें बैठे लोग कानपर जनेऊ टाँगकर उठ गये! थोड़ी देरमें सभी लोग उठकर चले गये। धीरे-धीरे गाने-बजानेवाले भी खिसक गये। बाबाजी तो आँखें बन्द करके अपनी मस्तीमें कीर्तन करते ही रहे। क्योंकि वे हनुमान्‌जीकी आज्ञाके अनुसार शुद्ध हरिकथा कर रहे थे। प्रकाशकी व्यवस्था करनेवाले भी चले गये। अब दरीवालोंको मुश्किल हो गयी कि बाबाजी तो मस्तीसे नाच रहे हैं, दरी कैसे उठायें! उन्होंने भी अटकल लगायी। जब बाबाजी नाचते-नाचते उधर गये तो इधरकी दरी इकट्ठी कर ली और जब वे इधर आये तो उधरकी दरी इकट्ठी कर ली और चल दिये। जब सब चले गये, तब हनुमान्‌जी प्रकट हो गये। बाबाजीने हनुमान्‌जीसे कहा कि 'महाराज! सबको दर्शन दें!' हनुमान्‌जी बोले—'सब हैं कहाँ?' वहाँ और तो कोई था ही नहीं, केवल बाबाजी ही थे।

इस प्रकार भावपूर्वक केवल भगवन्नामका संकीर्तन करना 'शुद्ध हरिकथा' है। इस शुद्ध हरिकथासे भगवान् साक्षात् प्रकट हो जाते हैं।

१०. घोड़ा अड़ गया

सन्त-महात्माओंको हमारी विशेष गरज रहती है। जैसे, माँको अपने बच्चेकी याद आती है। बच्चेको भूख लगते ही माँ स्वयं चलकर बच्चेके पास चली आती है, ऐसे ही सन्त-महात्मा सच्चे जिज्ञासुओंके पास खिंचे चले आते हैं। इस विषयमें एक कहानी सुनी है—

एक गृहस्थ बहुत ऊँचे दर्जेके तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुष थे। वे अपने घोड़ेपर चढ़कर किसी गाँव जा रहे थे। चलते-चलते घोड़ा एक अन्य रास्तेपर चल पड़ा। उन्होंने उसको कितना ही मोड़ना चाहा, लेकिन वह तो उसी रास्तेपर चलनेके लिये अड़ गया। इसपर उन्होंने सोचा कि अच्छी बात है, इसके मनमें जिधर जानेकी है, उधरसे चलना चाहिये। अपने थोड़ा चक्कर पड़ेगा, कोई बात नहीं। वह घोड़ा जाते-जाते एक घरके सामने रुक गया। समय अधिक हो गया था, अतः वे सन्त घोड़ेसे नीचे उतर पड़े और उस घरके अन्दर गये। वहाँ एक सज्जन मिले। उन्होंने उन महापुरुषका बड़ा आदर-सत्कार किया, क्योंकि वे उन्हें नामसे जानते थे कि अमुक महापुरुष बड़े अच्छे सन्त हैं। वे सज्जन अच्छे साधक थे। वे कई बार सोचते थे कि सन्त-महात्माके पास जावें और उनसे साधन-सम्बन्धी रास्ता पूछें। आज तो भगवान्‌ने कृपा कर दी, तो घर बैठे गङ्गा आ गयीं। उन्होंने उन गृहस्थ-सन्तको भोजनादि कराया। सत्संगसम्बन्धी बातें हुईं। जो बातें उन सज्जनने पूछीं, उनका अच्छी प्रकार समाधान उन सन्तने किया। वे सन्त जाते-जाते बोले कि 'भाई! जब भी कोई शंका हो तो यह मेरा पता है, आ जाना

या मुझे समाचार कर देना, मैं आ जाऊँगा।' इसपर उन सज्जनने पूछा—'महाराज! अभी आपको किसने समाचार भेजा था कि आप पधारिये?' तो वे सन्त बोले—'मेरा घोड़ा अड़ गया था, इसलिये मुझे आना पड़ा।' तो उन सज्जनने कहा—'अबकी बार फिर आपका घोड़ा अड़ जाय तब फिर आ जाना।' तात्पर्य यह है कि जब साधककी सच्ची जिज्ञासा होती है तो सन्तोंका घोड़ा अड़ जाता है।

सन्तोंकी बात क्या! स्वयं भगवान्‌के कानोंमें भी सच्ची पुकार तुरन्त पहुँच जाती है और वे किसी सन्तके साथ हमारी भेंट करा देते हैं—

सच्चे हृदयसे प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्त-वत्सल कानमें वह पहुँच झट ही जाय है॥

११. सत्संगका असर

डाकुओंका एक दल था। उनमें जो बड़ा-बूढ़ा डाकू था, वह सबसे कहता था कि 'भाई, जहाँ कथा-सत्सङ्ग होता हो, वहाँ कभी मत जाना, नहीं तो तुम्हारा काम बन्द हो जायगा। कहीं जा रहे हो, बीचमें कथा होती हो तो जोरसे कान दबा लेना, उसको सुनना बिलकुल नहीं।' ऐसी शिक्षा डाकुओंको मिली हुई थी। एक दिन एक डाकू कहीं जा रहा था। रास्तेमें एक जगह सत्सङ्ग-प्रवचन हो रहा था। रास्ता वही था, उधर ही जाना था। जब वह डाकू उधरसे गुजरने लगा तो उसने जोरसे अपने कान दबा लिये। चलते हुए अचानक उसके पैरमें एक काँटा लग गया। उसने एक हाथसे

काँटा निकाला और फिर कान दबाकर चल पड़ा। काँटा निकालते समय उसको यह बात सुनायी दी कि देवताकी छाया नहीं होती।

एक दिन उन डाकुओंने राजाके खजानेमें डाका डाला। राजाके गुप्तचरोंने खोज की। एक गुप्तचरको उन डाकुओंपर शक हो गया। डाकूलोग देवीकी पूजा किया करते थे। वह गुप्तचर देवीका रूप बनाकर उनके मंदिरमें देवीकी प्रतिमाके पास खड़ा हो गया। जब डाकूलोग वहाँ आये तो उसने कुपित होकर डाकुओंसे कहा कि तुम लोगोंने इतना धन खा लिया, पर मेरी पूजा ही नहीं की! मैं तुम सबको खत्म कर दूँगी। ऐसा सुनकर वे सब डाकू डर गये और बोले कि क्षमा करो, हमसे भूल हो गयी। हम जरूर पूजा करेंगे। अब वे धूप-दीप जलाकर देवीकी आरती करने लगे। उनमेंसे जिस डाकूने कथाकी यह बात सुन रखी थी कि देवताकी छाया नहीं होती, वह बोला—यह देवी नहीं है। देवीकी छाया नहीं पड़ती, पर इसकी तो छाया पड़ रही है! ऐसा सुनते ही डाकुओंने देवीका रूप बनाये हुए उस गुप्तचरको पकड़ लिया और लगे मारने। वे बोले कि चोर तो तू है, हम कैसे हैं? हमने चोरी की ही नहीं। वह गुप्तचर वहाँसे भाग गया। सत्सङ्गकी एक बात सुननेसे ही फर्क पड़ गया।

१२. चुगलीसे हानि

चुगली करना, इधर-उधर बात फैलाना, द्वेष पैदा करना, कलह करवाना—यह महान् हत्या है, बड़ा भारी पाप है। एक नौकर मुसलमानके यहाँ जाकर रहा। रहनेसे पहले उसने कह दिया कि मेरी इधर-की-उधर करनेकी आदत है, पहले ही कह देता हूँ! मियाँने सोचा कि कोई परवाह नहीं, *'मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा काजी'* और रख लिया उसे। अब वह एक दिन जाकर रोने लगा तो बीबीने पूछा कि रोता क्यों है? तो बोला कि आपके घर रहता हूँ, तनखा पाता हूँ, जिससे मेरा काम चलता है। आपके हितकी बात कहनेकी मनमें आती है, पर क्या करूँ, आपको जचे, न जचे! दुःख होता है! बीबीने कहा कि बता तो दे, क्या दुःख है? उसने कहा कि मियाँ साहब तो दूसरी शादी करना चाहते हैं, आपके आफत आ जायगी! तो बीबीने पूछा कि इसका कोई उपाय है? उसने कहा—'हाँ, इसका उपाय है। आप मियाँकी दाढ़ीके कुछ केश ले आओ तो मैं उसकी एक ताबीज (यन्त्र) बना दूँगा, फिर सब ठीक हो जायगा।' उधर उस मियाँको जाकर कह दिया कि 'बीबी आपसे बड़ा द्वेष रखती है, कभी मारेगी आपको! मेरे आगे बात करती है, इसलिये आप खयाल रखना।' अब मियाँ भी सजग रहने लगा कि कहीं मेरेको मार न दे। एक दिन मियाँ नींदका बहाना बनाकर लेटे हुए थे। वह दाढ़ीके केश काटनेके लिये छुरी लेकर आयी तो उसने सोचा कि यह तो मेरा गला काटेगी। अतः दोनोंमें बड़ी कलह हो गयी। इसलिये कहा है।

चुगलखोरसे बात न करना, खड़ा न रहना पास।
मियाँ बीबी दोनों मरे, भयो कुटुम्ब को नास॥

१३. दृढ़ उद्देश्यसे लाभ

एक भक्त इमलीके वृक्षके नीचे बैठकर भगवान्का भजन कर रहा था। एक दिन वहाँ नारदजी महाराज आ गये। उस भक्तने नारदजीसे कहा कि आप इतनी कृपा करें कि जब भगवान्के पास जायँ, तब उनसे पूछ लें कि वे मुझे कब मिलेंगे? नारदजी भगवान्के पास गये और पूछा कि अमुक स्थानपर एक भक्त इमलीके वृक्षके नीचे बैठा है और भजन कर रहा है, उसको आप कब मिलेंगे? भगवान्ने कहा कि उस वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने जन्मोंके बाद मिलूँगा। ऐसा सुनकर नारदजी उदास हो गये। वे उस भक्तके पास गये, पर उससे कुछ कहा नहीं। भक्तने प्रार्थना की कि भगवान्ने क्या कहा है, कह तो दो। नारदजी बोले कि तुम सुनोगे तो हताश हो जाओगे। जब भक्तने बहुत आग्रह किया, तब नारदजी बोले कि इस वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने जन्मोंके बाद भगवान्की प्राप्ति होगी। भक्तने उत्सुकतासे पूछा कि क्या भगवान्ने खुद ऐसा कहा है? नारदजीने कहा कि हाँ, खुद भगवान्ने कहा है। यह सुनकर वह भक्त खुशीसे नाचने लगा कि भगवान् मेरेको मिलेंगे, मिलेंगे, मिलेंगे!! क्योंकि भगवान्के वचन झूठे नहीं हो सकते। इतनेमें ही भगवान् वहाँ प्रकट हो गये! नारदजीने देखा तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे भगवान्से बोले कि महाराज! अगर यही बात थी तो मेरी फजीती क्यों करायी? आपको जल्दी मिलना था तो मिल जाते। मेरेसे तो कहा कि इतने जन्मोंके बाद मिलूँगा और आप अभी आ गये! भगवान्ने कहा कि नारद! जब तुमने इसके विषयमें पूछा था, तब यह जिस चालसे भजन कर रहा था, उस चालसे तो इसको उतने ही जन्म लगते। परन्तु अब तो इसकी चाल ही बदल गयी! यह तो 'भगवान् मेरेको

मिलेंगे'—इतनी बातपर ही मस्तीसे नाचने लग गया! इसलिये मुझे अभी ही आना पड़ा। कारण कि उद्देश्यकी सिद्धिमें जो अटल विश्वास, अनन्यता, दृढ़ता, उत्साह होता है, उससे भजन तेज हो जाता है।

एक सन्त थे। वे एक जाटके घर गये। जाटने उनकी बड़ी सेवा की। सन्तने उससे कहा कि रोजाना नामजप करनेका कुछ नियम ले लो। जाटने कहा कि बाबा, हमारेको वक्त नहीं मिलता। सन्तने कहा कि अच्छा, रोजाना एक बार ठाकुरजीकी मूर्तिका दर्शन कर आया करो। जाटने कहा कि मैं तो खेतमें रह जाता हूँ, ठाकुरजीकी मूर्ति गाँवके मन्दिरमें है, कैसे करूँ? सन्तने उसको कई साधन बताये कि वह कुछ-न-कुछ नियम ले ले, पर वह यही कहता रहा कि मेरेसे यह बनेगा नहीं। मैं खेतमें काम करूँ या माला लेकर जप करूँ! इतना समय मेरे पास कहाँ है? बाल-बच्चोंका पालन-पोषण करना है; तुम्हारे-जैसे बाबाजी थोड़े ही हूँ कि बैठकर भजन करूँ। सन्तने कहा कि अच्छा, तू क्या कर सकता है? जाट बोला कि हमारे पड़ोसमें एक कुम्हार रहता है, उसके साथ मेरी मित्रता है; खेत भी पास-पासमें है और घर भी पास-पासमें है; रोजाना नियमसे एक बार उसको देख लिया करूँगा। सन्तने कहा कि ठीक है, उसको देखे बिना भोजन मत करना। जाटने स्वीकार कर लिया। जब उसकी स्त्री कहती कि रोटी तैयार हो गयी, भोजन कर लो तो वह चट बाड़पर चढ़कर कुम्हारको देख लेता और भोजन कर लेता। इस नियममें वह पक्का रहा।

एक दिन जाटको खेतमें जल्दी जाना था, इसलिये भोजन जल्दी तैयार कर लिया। उसने बाड़पर चढ़कर देखा तो

कुम्हार दीखा नहीं। पूछनेपर पता लगा कि वह तो मिट्टी खोदने बाहर गया है! जाट बोला कि कहाँ मर गया, कम-से-कम देख तो लेता। अब जाट उसको देखनेके लिये तेजीसे भागा। उधर कुम्हारको मिट्टी खोदते-खोदते एक हाँडी मिल गयी, जिसमें तरह-तरहके रत्न, अशर्फियाँ भरी हुई थीं। उसके मनमें आया कि कोई देख लेगा तो मुश्किल हो जायगी! अतः वह देखनेके लिये ऊपर चढ़ा तो सामने वह जाट आ गया! कुम्हारको देखते ही जाट वापिस भागा तो कुम्हारने समझा कि उसने वह हाँडी देख ली और अब वह आफत पैदा करेगा। कुम्हारने आवाज लगायी कि अरे, जा मत, जा मत! जाट बोला कि बस, देख लिया, देख लिया! कुम्हार बोला कि अच्छा, देख लिया तो आधा तेरा, आधा मेरा, पर किसीसे कहना मत! जाट वापिस आया तो उसको धन मिल गया। उसके मनमें विचार आया कि सन्तसे अपना मनचाहा नियम लेनेमें इतनी बात है, अगर सदा उनकी आज्ञाका पालन करूँ तो कितना लाभ है! ऐसा विचार करके वह जाट और उसका मित्र कुम्हार—दोनों ही भगवान्‌के भक्त बन गये।

तात्पर्य यह है कि हम दृढ़तासे अपना एक उद्देश्य बना लें कि चाहे जो हो जाय, हमें तो भगवान्‌की तरफ चलना है, भगवान्‌का भजन करना है। उद्देश्य बनानेकी अपेक्षा भी उद्देश्यको पहचान लें। कारण कि उद्देश्य पहले बना है, मनुष्यजन्म पीछे मिला है। मनुष्यजन्म केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिला है—इस उद्देश्यको पहचान लें, सन्देहरहित मान लें तो फिर भजन अपने-आप होगा।

१४. राम काज करिबे को आतुर

एक बार भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—तीनों भाइयोंने माता सीताजीसे मिलकर विचार किया कि हनुमान्जी हमें रामजीकी सेवा करनेका मौका ही नहीं देते, पूरी सेवा अकेले ही किया करते हैं। अतः अब रामजीकी सेवाका पूरा काम हम ही करेंगे, हनुमान्जीके लिये कोई भी काम नहीं छोड़ेंगे। ऐसा विचार करके उन्होंने सेवाका पूरा काम आपसमें बाँट लिया। जब हनुमान्जी सेवाके लिये सामने आये, तब उनको रोक दिया और कहा कि आजसे प्रभुकी सेवा बाँट दी गयी है, आपके लिये कोई सेवा नहीं है। हनुमान्जीने देखा कि भगवान्को जम्हाई (जँभाई) आनेपर चुटकी बजानेकी सेवा किसीने भी नहीं ली है। अतः उन्होंने यही सेवा अपने हाथमें ले ली। यह सेवा किसीके खयालमें ही नहीं आयी थी! हनुमान्जीमें प्रभुकी सेवा करनेकी लगन थी। जिसमें लगन होती है, उसको कोई-न-कोई सेवा मिल ही जाती है। अब हनुमान्जी दिनभर रामजीके सामने ही बैठे रहे और उनके मुखकी तरफ देखते रहे; क्योंकि रामजीको किस समय जम्हाई आ जाय, इसका क्या पता? जब रात हुई, तब भी हनुमान्जी उसी तरह बैठे रहे। भरतादि सभी भाइयोंने हनुमान्जीसे कहा कि रातमें आप यहाँ नहीं बैठ सकते, अब आप चले जायँ। हनुमान्जी बोले कि कैसे चला जाऊँ? रातको न जाने कब रामजीको जम्हाई आ जाय! जब बहुत

आग्रह किया, तब हनुमान्जी वहाँसे चले गये और छतपर

जाकर बैठ गये। वहाँ बैठकर उन्होंने लगातार चुटकी बजाना शुरू कर दिया, क्योंकि रामजीको न जाने कब जम्हाई आ जाय! यहाँ रामजीको ऐसी जम्हाई आयी कि उनका मुख खुला ही रह गया, बन्द हुआ ही नहीं! यह देखकर सीताजी बड़ी व्याकुल हो गयीं कि न जाने रामजीको क्या हो गया है! भरतादि सभी भाई आ गये। वैद्योंको बुलाया गया तो वे भी कुछ कर नहीं सके। वसिष्ठजी आये तो उनको आश्चर्य हुआ कि ऐसी चिन्ताजनक स्थितिमें हनुमान्‌जी दिखायी नहीं दे रहे हैं! और सब तो यहाँ हैं, पर हनुमान्‌जी कहाँ हैं? खोज करनेपर हनुमान्‌जी छतपर बैठे चुटकी बजाते हुए मिले। उनको बुलाया गया और वे रामजीके पास आये तो चुटकी बजाना बन्द करते ही रामजीका मुख स्वाभाविक स्थितिमें आ गया! अब सबकी समझमें आया कि यह सब लीला हनुमान्‌जीके चुटकी बजानेके कारण ही थी! भगवान्‌ने यह लीला इसलिये की थी कि जैसे भूखेको अन्न देना ही चाहिये, ऐसे ही सेवाके लिये आतुर हनुमान्‌जीको सेवाका अवसर देना ही चाहिये, बन्द नहीं करना चाहिये। फिर भरतादि भाइयोंने ऐसा आग्रह नहीं रखा।

१५. तीन दिनका राज्य

एक राजकुँअर थे। स्कूलमें पढ़नेके लिये जाते थे। वहाँ प्रजाके बालक भी पढ़ने जाते थे। उनमेंसे पाँच-सात बालक राजकुँअरके मित्र हो गये। वे मित्र बोले—'आप राजकुँअर हो, राजगद्दीके मालिक हो। आज आप प्रेम और स्नेह करते हो, लेकिन राजगद्दी मिलनेपर ऐसा ही प्रेम निभायेंगे, तब हम समझेंगे कि मित्रता है, नहीं तो क्या है?' राजकुँअर बोले कि अच्छी बात है। समय बीतता गया। सब बड़े हो गये। राजकुँअरको राजगद्दी मिल गयी। एक-दो वर्षमें राज्य अच्छी प्रकार जम गया। राजकुँअरने अपने मित्रोंमेंसे एकको बुलाया और कहा कि तुम्हें याद है कि तुमने कहा था—'राजा बननेके बाद मित्रता निबाहो, तब समझें।' 'अब तुम्हें तीन दिनके लिये राज्य दिया जाता है। आप राजगद्दीपर बैठो और राज्य करो।' वह बोला—'अन्नदाता! वह तो बचपनकी बात थी। मैं राज्य नहीं चाहता।' बहुत आग्रह करनेपर उस मित्रने तीन दिनके लिये राज्य स्वीकार कर लिया।

वह मित्र राजगद्दीपर बैठा और उस दिन खान-पान ऐश-आराममें मगन हो गया। दूसरे दिन सैर-सपाटा आदिमें लगा रहा। रात हुई तो बोला—'हम तो राजमहलमें जायँगे।' सब बड़ी मुश्किलमें पड़ गये। रानी बड़ी पतिव्रता थी। वह मित्र तो अड़ गया कि सब कुछ मेरा है, मैं राजा हूँ तो रानी भी मेरी है। रानीने अपने कुलगुरु ब्राह्मण देवतासे पुछवाया कि अब मैं क्या करूँ? गुरुजी महाराजने कहा—'बेटी! तुम चिन्ता मत करो, हम सब ठीक कर देंगे। गुरुजीने उस तीन दिनके लिये राजा बने मित्रसे पूछा कि आप महलोंमें जाना चाहते

हैं तो राजाकी भाँति जाना होगा। इसलिये आपका ठीक तरहसे शृङ्गार होगा। उन्होंने भृत्योंको बुलाया और आज्ञा दी—महाराजके महलोंमें जानेकी तैयारी करो, शृङ्गार करो। नाईको बुलाया और कहा कि महाराजकी हजामत करो ठीक ढंगसे। तीन-चार घन्टे हो गये, तब वह राजा बोला—ऐसे क्या देरी लगाते हो? तो नाई बोला—महाराज! राजाओंका मामला है, साधारण आदमीकी तरह हजामत कैसे होगी? हजामतमें लम्बी कर दी अर्थात् बहुत देर लगा दी। इसके बाद पोशाक पहनानेवाला आदमी आया। उसने बहुत देर पोशाक पहनानेमें लगा दी। उसके बाद इत्र-तेल-फुलेल आदि लगानेवाला आया। उसने देर लगायी। इस प्रकार शृङ्गार-शृङ्गारमें ही रात बीत गयी। अब सुबह हो गयी। अन्तिम दिन था। समय पूरा हो गया और राजगद्दी वापस राजा साहबको मिल गयी। राजा साहबने अब अपने दूसरे मित्रको बुलाया और आग्रहपूर्वक तीन दिनके लिये राज्य दे दिया और बोले कि मैं, मेरी स्त्री, मेरा घर—ये सब तो मेरे हैं। मैं भी आपकी प्रजा हूँ। बाकी सारा राज्य आपका है। वह मित्र तीन दिनके लिये राजा बन गया।

राज्य मिलते ही उस मित्रने पूछा कि मेरा कितना अधिकार है? मन्त्रीने जवाब दिया—'महाराज! सारी फौज, पलटन, खजाना और इतनी पृथ्वीपर आपका राज्य है।' उसने दस-बीस योग्य अधिकारियोंको बुलाकर कहा कि हमारे राज्यमें कहाँ-कहाँ, क्या-क्या चीजकी कमी है, किसके क्या-क्या तकलीफें हैं—पता लगाकर मुझे बताओ। उन्होंने

आकर खबर दी—फलाँ-फलाँ गाँवमें पानीकी तकलीफ है, कुआँ नहीं है, धर्मशाला नहीं है, पाठशाला नहीं है। उस राजाने हुक्म दिया कि सब गाँवोंमें जहाँ जो कमी है, तीन दिनमें पूरी हो जानी चाहिये। खजांचीको कह दिया कि मकान, धर्मशाला, पाठशाला, कुएँ आदि बनानेमें जो भी खर्च हो, वह तुरन्त दिया जाय। राजाका हुक्म होते ही अनेक लोग राजाज्ञाके पालनमें लग गये। तीन दिन पूरे होते-होते विभिन्न स्थानोंसे समाचार आने लगे कि इतना-इतना काम हो गया है और इतना बाकी रहा है। जल्दी पूरा करनेका आदेश देकर, उस मित्रने राज्य वापस राजाको दे दिया। राजा बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि हम तुम्हें जाने नहीं देंगे। हमारा मन्त्री बनायेंगे। हमें राज्य मिला, लेकिन हमने प्रजाका इतना ध्यान नहीं रखा, जितना आपने तीन दिनमें रखा है। अब राजा तो नाममात्रके रहे और वह मित्र सदाके लिये, उनका विश्वासपात्र मन्त्री बन गया।

इसी प्रकार हमें बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था—ऐसे तीन दिनके लिये भगवान्‌की तरफसे राज्य मिला है। अब जो रुपया-संग्रह और भोग भोगनेमें लगे हैं, उनकी तो हजामत हो रही है और जो दूसरे मित्रकी तरह सेवा कर रहे हैं, उनको भगवान् कहते हैं—

'मैं तो हूँ भगतन को दास, भगत मेरे मुकुट मणि॥'

तो भाई, हमारे पास जो भी धन, सम्पत्ति, वैभव आदि है, उसके द्वारा सबका प्रबन्ध करो, सबकी सेवा करो। यह राज्य तीन दिनके लिये मिला है। अब निर्णय अपनेको करना

है कि हजामतमें समय खोना है या भगवान्‌का विश्वासपात्र बनना है, लक्ष्मीजी हमारी माँ हैं। भगवान् हमारे पिता हैं। निर्वाहके लिये लक्ष्मी माँसे ले लो; लेकिन लक्ष्मीजीको भोगना चाहते हैं, स्त्री बनाना चाहते हैं—यह पाप है। वह हमारी पूजनीया माँ है। सेवाभाव होगा तो माँ भी खुश होंगी और पिताजी भी खुश होंगे। फिर हमें संसारमें लौटनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। पिताजीके धाममें हमारा सदा निवास होगा।

१६. विचित्र बहुरूपिया

एक बाबाजी कहीं जा रहे थे। रास्तेमें एक खेत आया। बाबाजी वहाँ लघुशंकाके लिये (पेशाब करने) बैठ गये। पीछेसे खेतके मालिकने उनको देखा तो समझा कि हमारे खेतमेंसे मतीरा चुराकर ले जानेवाला यही है; क्योंकि खेतमेंसे मतीरोंकी चोरी हुआ करती थी। उसने पीछेसे आकर बाबाजीके सिरपर लाठी मारी और बोला—'हमारे खेतसे मतीरा चुराता है?' बाबाजी बोले—भाई! मैं तो लघुशंका कर रहा था!' कृषकने बाबाजीको देखा तो बहुत दुःखी हुआ और बोला—'महाराज! मेरेसे बड़ा कसूर हो गया! मैं समझा था कि यह मतीरा चुरानेवाला है।' बाबाजी बोले— 'तेरा कसूर है ही नहीं; क्योंकि तूने तो चोरको मारा है, मेरेको थोड़े ही मारा है! क्या तूने साधु समझकर मारा है? कृषक बोला—'नहीं महाराज! चोर समझकर मारा है। अब मैं क्या करूँ?' बाबाजी बोले—'जिसमें तेरी प्रसन्नता हो, वह कर।'

बाबाजीके सिरमें लाठी लगनेसे रक्त निकल रहा था और पीड़ा हो रही थी। कृषक उनको गाड़ीपर बैठाकर अस्पताल ले गया और वहाँ भरती कर दिया। वहाँ उनकी मलहम-पट्टी करके उनको सुला दिया। थोड़ी देर बाद एक नौकर दूध लेकर आया और बाबाजीसे बोला—'महाराज! यह दूध लाया हूँ, पी लीजिये।' बाबाजी पहले हँसे, फिर बोले—'वाह! वाह! तू बड़ा विचित्र बहुरूपिया है, पहले लाठी मारता है, फिर दूध पिलाता है!' वह आदमी बोला—'महाराज! मैंने लाठी नहीं मारी है, लाठी मारनेवाला दूसरा था!' बाबाजी बोले—'नहीं, मैं तुझे पहचानता हूँ, लाठी मारनेवाला तू ही था। तेरे सिवाय दूसरा कौन आये, कहाँसे आये और कैसे आये? बता! यह केवल तेरी ही लीला है!' इस प्रकार बाबाजीकी दृष्टि तो '**वासुदेवः सर्वम्**' पर थी, पर वह आदमी डर रहा था कि बाबाजी कहीं मेरेको फँसा न दें! तात्पर्य है कि सब रूपोंमें भगवान् ही हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(मानस, बाल० ८। १)

१७. नया जन्म

एक चोरने राजाके महलमें चोरी की। राजाके सिपाहियोंको पता चला तो उन्होंने उसके पदचिह्नोंका पीछा किया। चोरके पदचिह्नोंको देखते-देखते वे नगरसे बाहर आ गये। पासमें एक गाँव था। उन्होंने चोरके पदचिह्न गाँवकी ओर जाते देखे। सिपाहियोंने गाँवके बाहर चक्कर लगाकर देखा कि चोर गाँवसे बाहर नहीं गया, गाँवमें ही है। गाँवमें जाकर उन्होंने देखा एक जगह सत्संग हो रहा है और बहुत-से लोग बैठकर सत्संग सुन रहे हैं। सिपाहियोंको सन्देह हुआ कि चोर भी सत्संगमें लोगोंके बीच बैठा होगा। वे वहीं खड़े रहकर उसका इन्तजार करने लगे।

सत्संगमें सन्त कह रहे थे कि जो मनुष्य सच्चे हृदयसे भगवान्‌की शरणमें चला जाता है, भगवान् उसके सब पापोंको माफ कर देते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।'

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वाल्मीकि-रामायण ६। १८। ३३)

'जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी याचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण

प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है।'

इसकी व्याख्या करते हुए सन्तने कहा कि जो भगवान्‌का हो गया, उसका मानो दूसरा जन्म हो गया! अब वह पापी नहीं रहा, साधु हो गया!

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

चोर वहीं बैठा सुन रहा था। उसपर सत्संगकी बातोंका असर पड़ा। उसने वहीं बैठे-बैठे यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब मैं भगवान्‌की शरण लेता हूँ! अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। मैं भगवान्‌का हो गया! सत्संग समाप्त हुआ। लोग उठकर बाहर जाने लगे। बाहर राजाके सिपाही सबके पदचिह्नोंको देख रहे थे। चोर बाहर निकला तो सिपाहियोंने उसके पदचिह्नोंको पहचान लिया और उसको पकड़ लिया।

सिपाहियोंने चोरको राजाके सामने पेश किया और कहा कि 'महाराज! हमने चोरको पकड़ लिया है। इसी आदमीने चोरी की है।' राजाने चोरसे पूछा—'इस महलमें तुमने चोरी की? सच-सच बताओ, तुमने चोरी किया धन कहाँ रखा है?' चोरने दृढ़तापूर्वक कहा—'महाराज! चोरी मैंने नहीं की। मैंने तो इस जन्ममें ही कभी चोरी नहीं की!' सिपाही बोले—'महाराज! यह झूठ बोलता है। हम इसके पदचिह्नोंको

पहचानते हैं। इसके पदचिह्नोंसे साफ सिद्ध होता है कि चोरी इसीने की है।' राजाने चोरकी परीक्षा लेनेकी आज्ञा दी, जिससे पता चले कि वह झूठा है या सच्चा।

चोरके हाथपर पीपलके ढाई पत्ते रखकर उसको कच्चे सूतसे बाँध दिया गया। फिर उसके ऊपर गरम करके लाल किया हुआ लोहा रखा। उसका हाथ जलना तो दूर रहा, पत्ते और सूत भी नहीं जला। उसने लोहा नीचे फेंका तो जहाँ वह गिरा, वह जगह काली हो गयी। राजाने देखा कि इसने वास्तवमें चोरी नहीं की, यह निर्दोष है। अब राजा सिपाहियोंपर बहुत नाराज हुआ कि तुमलोगोंने एक निर्दोष पुरुषपर चोरीका आरोप लगाया। तुमलोगोंको दण्ड दिया जायगा। यह सुनकर चोर बोला—'नहीं महाराज! इनको आप दण्ड न दें। इनका कोई दोष नहीं है। चोरी मैंने ही की थी!' राजाने सोचा कि यह साधु पुरुष है, इसलिये सिपाहियोंको दण्डसे बचानेके लिये चोरीका दोष अपनेपर ले रहा है। राजा बोला—'तुम इनपर दया करके, इनको बचानेके लिये ऐसा कह रहे हो। पर मैं इनको अवश्य दण्ड दूँगा।' चोर बोला—'महाराज! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ, चोरी मैंने ही की थी। अगर आपको विश्वास न हो तो अपने आदमियोंको मेरे साथ भेजो। मैंने चोरीका धन जंगलमें जहाँ छिपा रखा है, वहाँसे लाकर दिखा दूँगा।' राजाने अपने आदमियोंको चोरके साथ भेजा। चोर उनको वहाँ ले गया, जहाँ उसने धन जमीनमें गाड़ रखा था। चोरने वहाँसे धन निकाल लिया और लाकर राजाके सामने रख दिया। यह देखकर राजाको बड़ा

आश्चर्य हुआ! राजा बोला—'अगर तुमने चोरी की थी तो परीक्षा करनेपर तुम्हारा हाथ क्यों नहीं जला? परन्तु तुम्हारा हाथ भी नहीं जला और तुमने चोरीका धन भी लाकर दे दिया—यह हमारी समझमें नहीं आ रहा है! ठीक-ठीक बताओ, बात क्या है?'

चोर बोला—'महाराज! मैंने चोरी करनेके बाद धनको जंगलमें गाड़ दिया और गाँवमें चला गया। वहाँ एक जगह सत्संग हो रहा था। मैं वहाँ जाकर लोगोंके बीच बैठ गया। सत्संगमें मैंने सुना कि जो भगवान्‌की शरण लेकर पुनः पाप न करनेका निश्चय कर लेता है, उसको भगवान् सब पापोंसे मुक्त कर देते हैं। उसका नया जन्म हो जाता है। इस बातका मेरेपर असर पड़ा और मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा। अब मैं भगवान्‌का हो गया। इसलिये तबसे मेरा नया जन्म हो गया। इस जन्ममें मैंने कोई चोरी नहीं की, इसलिये मेरा हाथ नहीं जला। आपके महलमें मैंने जो चोरी की थी, वह तो पिछले जन्ममें की थी!'

१८. कल्याण कैसे होगा?

एक वेश्या थी। उसके मनमें विचार आया कि मेरा कल्याण कैसे हो? अपने कल्याणके लिये वह साधुओंके पास गयी। उन्होंने कहा कि तुम साधुओंका संग करो। साधु त्यागी होते हैं, इसलिये उनकी सेवा करो तो कल्याण होगा। फिर वह ब्राह्मणोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि साधु तो बनावटी हैं, पर हम जन्मसे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण सबका गुरु होता है। अतः तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो तो कल्याण होगा। इसके बाद वह संन्यासियोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि संन्यासी सब वर्णोंका गुरु होता है, इसलिये उसकी सेवा करनेसे कल्याण होगा। फिर वह वैरागियोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि वैरागी सबसे तेज होता है; अतः उसकी सेवा करो तो कल्याण होगा। फिर वह अलग-अलग सम्प्रदायोंके गुरुओंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि हम सबसे ऊँचे हैं, शेष सब पाखण्डी हैं। तुम हमारी चेली बन जाओ, हमारेसे मन्त्र लो, तब हम वह बात बतायेंगे, जिससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा। इस प्रकार वह वेश्या जहाँ भी गयी, वहीं उसको अपने-अपने वर्ण, आश्रम, मत, सम्प्रदाय आदिका पक्षपात दिखायी दिया। यह देखकर उसके मनमें आया कि अब तत्त्व समझमें आ गया! युक्ति हाथ लग गयी! साधु कहते हैं कि साधुओंको पूजो, ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मणोंको पूजो तो हम क्यों न वेश्याओंको पूजें! ऐसा सोचकर उसने वेश्याभोज करनेका विचार किया। उसमें सब वेश्याओंको निमन्त्रण दिया। निश्चित समयपर सब वेश्याएँ वहाँ आने लगीं।

उस गाँवके बाहर एक विरक्त, त्यागी सन्त रहते थे। उन्होंने देखा तो विचार किया कि आज क्या बात है? जब उनको मालूम हुआ कि आज वेश्याभोज हो रहा है तो वे

वेश्याको क्रियात्मक शिक्षा देनेके लिये वहाँ पहुँच गये। रसोई बन रही थी। रसोई बनानेवालोंने पकाये हुए चावलोंका पानी (माँड़) नालीमें गिराया। वेश्या छतपर खड़ी होकर जिधर देख रही थी, उधर बाबाजी बैठ गये और उस माँड़से हाथ धोने लगे। वेश्याने देखा तो बोली कि बाबाजी, यह क्या कर रहे हो? बाबाजीने कहा कि तू अन्धी हैं क्या? तेरेको दिखायी नहीं देता, मैं तो अपने हाथ धो रहा हूँ! वेश्याने बाबाजीको ऐसा करनेसे रोका तो वे माने नहीं। वेश्या उतरकर नीचे आयी और बोली कि बाबाजी, यह चावलोंका पानी है, इससे तो हाथ और मैले होंगे! आप साफ पानीसे हाथ धोओ। बाबाजीने कहा कि अगर इससे हाथ मैले हो जायँगे तो क्या वेश्याएँ ज्यादा साफ, निर्मल हैं, जिससे इनकी सेवासे कल्याण हो जायगा? हाथ मैले पानीसे साफ होते हैं या साफ पानीसे? यह सुनकर वेश्याको होश आया कि बाबाजी बात तो ठीक कहते हैं! तो फिर कल्याण कैसे होगा? बाबाजी बोले—जिस सन्तमें किसी मत, सम्प्रदाय आदिका पक्षपात, आग्रह न हो, जिसके आचरण शुद्ध हों, जिसके भीतर एक ही भाव हो कि जीवका कल्याण कैसे हो, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो—वह सन्त चाहे स्त्री हो या पुरुष, साधु हो या ब्राह्मण, किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय आदिका क्यों न हो, उस सन्तका संग करो, उनकी बातें सुनो तो कल्याण होगा।

तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ स्वार्थ और अभिमान होगा, भोग और संग्रहकी इच्छा होगी, वहाँ आसुरी सम्पत्ति आयेगी ही। जहाँ आसुरी सम्पत्ति आयेगी वहाँ शान्ति नहीं रहेगी, प्रत्युत अशान्ति होगी, संघर्ष होगा, पतन होगा।

१९. भगवान्‌की मरजी

एक बाबाजी थे। कहीं जा रहे थे नौकामें बैठकर। नौकामें और भी बहुत लोग थे। संयोगसे नौका बीचमें बह गयी। ज्यों ही वह नौका जोरसे बही, मल्लाहने कहा—'अपने-अपने इष्टको याद करो, अब नौका हमारे हाथमें नहीं रही। प्रवाह जोरसे आ रहा है और आगे भँवर पड़ता है, शायद डूब जाय। अतः प्रभुको याद करो।' यह सुनकर कई तो रोने लगे, कई भगवान्‌को याद करने लगे। बाबाजी भी बैठे थे। पासमें था कमण्डलु। उन्होंने *'जय सियाराम जय जय सियाराम, जय सियाराम जय जय सियाराम'* बोलना शुरू कर दिया और कमण्डलुसे पानी भर-भरकर नौकामें गिराने लगे। लोगोंने कहा—'यह क्या करते हैं?' पर कौन सुने! वे तो नदीसे पानी नौकामें भरते रहे और *'जय सियाराम जय जय सियाराम'* कहते रहे। कुछ ही देरमें नौका घूमकर ठीक प्रवाहमें आ गयी, जहाँ नाविकका वश चलता था। तब नाविकने कहा—'अब घबरानेकी बात नहीं रही, किनारा निकट ही है।' यह सुनकर बाबाजी नौकासे जलको बाहर फेंकने लगे और वैसे ही *'जय सियाराम जय जय सियाराम*............'कहने लगे। लोग बोले—'तुम पागल हो क्या? ऐसे-ऐसे काम करते हो?' बाबाजी—'क्या बात है भाई?' लोग—'तुमको दया नहीं आती? साधु बने हो। वेष तो तुम्हारा साधुका और काम ऐसा मूर्खके जैसा करते हो? लोग डूब जाते तब?' बाबाजी—'दया तो तब आती जब मैं अलग होता। मैं तो साधु ही रहा, मूर्खका काम कैसे किया जाय?' लोग—'जब नौका बह गयी तब तो तुम पानी नौकाके भीतर भरने लगे और जब नौका भँवरसे निकलने लगी तब पानी वापस बाहर

निकालने लगे। उलटा काम करते हो?' बाबाजी—'हम तो उलटा नहीं सीधा ही करते है। उलटा कैसे हुआ?' लोग—'सीधा कैसे हुआ?' बाबाजी—'सीधा ऐसे कि हम तो पूरा जानते नहीं। मैंने समझा कि भगवान्‌को नौका डुबोनी है। उनकी ऐसी मर्जी है तो अपने भी इसमें मदद करो और जब नौका प्रवाहसे निकल गयी तो समझा कि नौका तो उन्हें डुबोनी नहीं है, तब हमें तो उनकी इच्छाके अनुसार करना है—यह सोचकर पानी नौकासे बाहर फेंकने लगे। साधु ही हो गये तब हमें हमारे जीने-मरनेसे तो मतलब नहीं है, भगवान्‌की मर्जीमें मर्जी मिलाना है। पूरी जानते हैं नहीं। पहले यह जान लेते कि भगवान् खेल ही करते हैं, उन्हें नौका डुबोनी नहीं है तो हम उसमें पानी नहीं भरते। पर उस समय मनमें यह बात समझमें नहीं आयी। हमने यही समझा था कि नौका डुबोनी है, यही इशारा है।'

यह शरणागत भक्तका लक्षण है। यह तो उन सन्तोंने कर दिया; पर आपलोगोंसे यह कहना है कि कहीं नौका डूबने लगे तो उसमें पानी तो नहीं भरना, परंतु रोना बिलकुल नहीं। यही समझना कि बहुत ठीक है, बड़ी मौजकी, बड़े आनन्दकी बात है; इसमें भी कोई छिपा हुआ मङ्गल है।

२०. बुद्धिमान् राजा

किसीके पास धन बहुत है तो यह कोई विशेष भगवत्कृपाकी बात नहीं है। ये धन आदि वस्तुएँ तो पापीको भी मिल जाती हैं—*'सुत दारा अरु लक्ष्मी पापी के भी होय।'* इनके मिलनेमें कोई विलक्षण बात नहीं है। एक राजा थे। उस राजाकी साधु-वेशमें बड़ी निष्ठा थी। यह निष्ठा किसी-किसीमें ही होती है। वह राजा साधु-सन्तोंको देखकर बहुत राजी होता। साधु-वेशमें कोई आ जाय, कैसा भी आ जाय, उसका बड़ा आदर करता, बहुत सेवा करता। कहीं सुन लेता कि अमुक तरफसे सन्त आ रहे हैं तो पैदल जाता और उनको ले आता, महलोंमें रखता और खूब सेवा करता। साधु जो माँगे, वही दे देता। उसकी ऐसी प्रसिद्धि हो गयी। पड़ोस-देशमें एक दूसरा राजा था, उसने यह बात सुन रखी थी। उसके मनमें ऐसा विचार आया कि यह राजा बड़ा मूर्ख है, इसको साधु बनकर कोई भी ठग ले। उसने एक बहुरूपियेको बुलाकर कहा कि तुम उस राजाके यहाँ साधु बनकर जाओ। वह तुम्हारे साथ जो-जो बर्ताव करे, वह आकर मेरेसे कहना। बहुरूपिया भी बहुत चतुर था। वह साधु बनकर वहाँ गया। वहाँके राजाने जब यह सुना कि अमुक रास्तेसे एक साधु आ रहा है तो वह उसके सामने गया और उसको बड़े आदर-सत्कारसे अपने महलमें ले आया, अपने हाथोंसे उसकी खूब सेवा की।

एक दिन राजाने उस साधुसे कहा कि 'महाराज, कुछ सुनाओ।' साधुने कहा कि 'राजन्! आप तो बड़े भाग्यशाली हो कि आपको इतना बड़ा राज्य मिला है, धन मिला है।

आपके पास इतनी बड़ी फौज है। आपकी स्त्री, पुत्र, नौकर आदि सभी आपके अनुकूल हैं। इसलिये भगवान्‌की आपपर बड़ी कृपा है!' इस प्रकार उस साधुने कई बातें कहीं। राजाने चुप करके सुन लीं। दो-तीन दिन रहनेके बाद वह साधु (बहुरूपिया) बोला कि 'राजन्! अब तो हम जायँगे।' राजा बोला—'अच्छा महाराज, जैसी आपकी मर्जी।' राजाने उसके आगे खजाना खोल दिया और कहा कि इसमेंसे आपको जो सोना-चाँदी, माणिक-मोती, रुपयें-पैसे चाहिये, खूब ले लीजिये। उस साधुने वहाँसे अच्छा-अच्छा माल ले लिया और ऊँटपर लाद दिया। जब वह रवाना होने लगा तब राजाने कहा कि 'महाराज, यह तो आपने अपनी तरफसे लिया है। एक चाँदीका बक्सा है, वह मैं अपनी तरफसे देता हूँ।' राजाने एक चाँदीके बक्सेको एक रेशमी जरीदार कपड़ेमें लपेटकर उसको दे दिया और कहा कि 'यह मेरी तरफसे आपको भेंट है।' उस साधुने वह बक्सा ले लिया और वहाँसे चल दिया।

वह साधु (बहुरूपिया) अपने राजाके पास पहुँचा। राजाने पूछा कि 'क्या-क्या लाये?' उसने सब बता दिया कि 'लाखों-करोड़ोंका धन ले आया हूँ।' राजाने समझा कि यह पड़ोसका राजा महान् मूर्ख ही है; क्योंकि इसको साधुकी पहचान ही नहीं है कि कैसा साधु है! यह तो बड़ा बेसमझ है! वह बहुरूपिया बोला कि 'एक बक्सा मुझे उस राजाने अपनी तरफसे दिया है कि यह मेरी तरफसे भेंट है।' राजाने कहा कि 'ठीक है, बक्सा लाओ, उसको मैं देखूँगा।' उसने

वह बक्सा राजाके पास रख दिया और उसकी चाबी दे दी।

राजाने खोलकर देखा कि चाँदीका एक बक्सा है, उसके भीतर एक और चाँदीका बक्सा है, फिर उसके भीतर एक और चाँदीका छोटा बक्सा है। तीनों बक्सोंको खोलकर देखा तो भीतरके छोटे बक्सेमें एक फूटी कौड़ी पड़ी मिली। राजाने सोचा कि क्या मतलब है इसका! तो वह समझ गया कि यह राजा मूर्ख नहीं है, बड़ा बुद्धिमान् है। साधु-वेशमें इसकी निष्ठा आदरणीय है। राजाने बहुरूपियेसे पूछा कि 'तुमसे क्या बात हुई, सारी बात बताओ।' उसने कहा कि 'एक दिन उस राजाने मेरेसे कहा कि महाराज, कुछ सुनाओ। मैंने कहा कि तुम तो बड़े भाग्यशाली हो। तुम्हारे पास राज्य है, धन-सम्पत्ति है, अनुकूल स्त्री-पुत्र आदि हैं, तुम्हारेपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है।' यह सुनकर राजा सारी बात समझ गया। तीन बक्से होनेका मतलब था—स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर। इनके भीतर क्या है! भीतर तो फूटी कौड़ी है, कुछ नहीं है। बाहरसे वेश-भूषा बड़ी अच्छी है, बाहरसे बड़े अच्छे लगते हैं पर भीतर कुछ नहीं है। आपपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है—यह जो बात कही, यह फूटी कौड़ी है। यह कोई कृपा हुआ करती है? कृपा तो यह होती है कि भगवान्‌का भजन करे, भगवान्‌में लग जाय।

२१. भगवान् किसके दास होते हैं?

वृन्दावनमें एक भक्तको बिहारीजीके दर्शन नहीं हुए। लोग कहते कि अरे! बिहारीजी सामने ही तो खड़े हैं। पर वह कहता कि भाई! मेरेको तो नहीं दीख रहे! इस तरह तीन दिन बीत गये पर दर्शन नहीं हुए। उस भक्तने ऐसा विचार किया कि सबको दर्शन होते हैं और मेरेको नहीं होते, तो मैं बड़ा पापी हूँ कि ठाकुरजी दर्शन नहीं देते; अतः मेरेको यमुनाजीमें डूब जाना चाहिये। ऐसा विचार करके रात्रिके समय वह यमुनाजीकी तरफ चला। वहाँ यमुनाजीके पास एक कोढ़ी सोया हुआ था। उसको भगवान्ने स्वप्नमें कहा कि अभी यहाँपर जो आदमी आयेगा, उसके तुम पैर पकड़ लेना। उसकी कृपासे तुम्हारा कोढ़ दूर हो जायगा। वह कोढ़ी उठकर बैठ गया। जैसे ही वह भक्त वहाँ आया, कोढ़ीने उसके पैर पकड़ लिये और कहा कि मेरा कोढ़ दूर करो। भक्त बोला कि अरे! मैं तो बड़ा पापी हूँ, ठाकुरजी मुझे दर्शन भी नहीं देते! बहुत झंझट किया; परन्तु कोढ़ीने उसको छोड़ा नहीं। अन्तमें कोढ़ीने कहा कि अच्छा, तुम इतना कह दो कि तुम्हारा कोढ़ दूर हो जाय। वह बोला कि इतनी हमारेमें योग्यता ही नहीं। कोढ़ीने जब बहुत आग्रह किया तब उसने कह दिया कि तुम्हारा कोढ़ दूर हो जाय। ऐसा कहते ही क्षणमात्रमें उसका कोढ़ दूर हो गया। तब उसने स्वप्नकी बात भक्तको सुना दी कि भगवान्ने ही स्वप्नमें मुझे ऐसा करनेके लिये कहा था। यह सुनकर भक्तने सोचा कि आज नहीं मरूँगा और लौटकर पीछे आया तो ठाकुरजीके दर्शन हो गये। उसने

ठाकुरजीसे पूछा कि महाराज! पहले आपने दर्शन क्यों नहीं

दिये? ठाकुरजीने कहा कि तुमने उम्रभर मेरे सामने कोई माँग नहीं रखी, मेरेसे कुछ चाहा नहीं; अतः मैं तुम्हें मुँह दिखानेलायक नहीं रहा! अब तुमने कह दिया कि इसका कोढ़ दूर कर दो, तो अब मैं मुँह दिखानेलायक हो गया! इसका क्या अर्थ हुआ? कि जो, कुछ भी नहीं चाहता, भगवान् उसके दास हो जाते हैं।

हनुमान्‌जीने भगवान्‌का कार्य किया तो भगवान् उनके दास, ऋणी हो गये—*'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं'* (मानस, सुन्दर० ३२। ४)। सेवा करनेवाला बड़ा हो जाता है और सेवा करानेवाला छोटा हो जाता है। परन्तु भगवान् और उनके प्यारे भक्तोंको छोटे होनेमें शर्म नहीं आती। वे जान करके छोटे होते हैं। छोटे बननेपर भी वास्तवमें वे छोटे होते ही नहीं और उनमें बड़प्पनका अभिमान होता ही नहीं।

२२. बुराईके बदले भलाई

पण्डित जयदेव एक बड़े अच्छे संत हुए हैं। एक राजा उनपर बहुत भक्ति रखता था और उनका सब प्रबन्ध अपनी तरफसे ही किया करता था। वे ब्राह्मण देवता (जयदेव) त्यागी थे और गृहस्थ होते हुए भी 'मेरेको कुछ मिल जाय, कोई धन दे दे'—ऐसा चाहते नहीं थे। उनकी स्त्री भी बड़ी विलक्षण पतिव्रता थी; क्योंकि उनका विवाह भगवान्‌ने करवाया था, वे विवाह करना नहीं चाहते थे। एक दिनकी बात है, राजाने उनको बहुत-सा धन दिया, लाखों रुपयोंके रत्न दिये। उनको लेकर वे वहाँसे रवाना हुए और घरकी तरफ

चले। रास्तेमें जंगल था। डाकुओंको इस बातका पता लग गया। उन्होंने जंगलमें जयदेवको घेर लिया और उनके पास जो धन था, वह सब छीन लिया। डाकुओंके मनमें आया कि यह राजाका गुरु है, कहीं जीता रह जायगा तो हमारेको पकड़वा देगा। अतः उन्होंने जयदेवके दोनों हाथ काट लिये और उनको एक सूखे हुए कुएँमें गिरा दिया। जयदेव कुएँके भीतर पड़े रहे। एक-दो दिनमें राजा जंगलमें आया। उसके आदमियोंने पानी लेनेके लिये कुएँमें लोटा डाला तो वे कुएँमेंसे बोले कि 'भाई, ध्यान रखना, मेरेको लग न जाय। इसमें जल नहीं है, क्या करते हो!' उन लोगोंने आवाज सुनी तो बोले कि यह आवाज तो पण्डितजीकी है! पण्डितजी यहाँ कैसे आये! उन्होंने राजाको कहा कि महाराज! पण्डितजी तो कुएँमेंसे बोल रहे हैं। राजा वहाँ गया। रस्सा डालकर उनको कुएँमेंसे निकाला तो देखा कि उनके दोनों हाथ कटे हुए हैं। उनसे पूछा गया कि यह कैसे हुआ? तो वे बोले कि भाई देखो, जैसा हमारा प्रारब्ध था, वैसा हो गया। उनसे बहुत कहा गया कि बताओ तो सही, कौन है, कैसा है। परन्तु उन्होंने कुछ नहीं बताया, यही कहा कि हमारे कर्मोंका फल है। राजा उनको घरपर ले गये। उनकी मलहम-पट्टी की, इलाज किया और खिलाने-पिलाने आदि सब तरहसे उनकी सेवा की।

एक दिनकी बात है। जिन्होंने जयदेवके हाथ काटे थे, वे चारों डाकू साधुके वेशमें कहीं जा रहे थे। उनको राजाने भी देखा और जयदेवने भी। जयदेवने उनको पहचान लिया

कि ये वही डाकू हैं। उन्होंने राजासे कहा कि देखो राजन्! तुम धन लेनेके लिये बहुत आग्रह किया करते हो। अगर धन देना हो तो वे जो चारों जा रहे हैं, वे मेरे मित्र हैं, उनको धन दे दो। मेरेको धन दो या मेरे मित्रोंको दो, एक ही बात है। राजाको आश्चर्य हुआ कि पण्डितजीने कभी उम्रभरमें किसीके प्रति 'आप दे दो' ऐसा नहीं कहा, पर आज इन्होंने कह दिया है! राजाने उन चारोंको बुलवाया। वे आये और उन्होंने देखा कि हाथ कटे हुए पण्डितजी वहाँ बैठे हैं, तो उनके प्राण सूखने लगे कि अब कोई आफत आयेगी! अब ये हमें मरवा देंगे। राजाने उनके साथ बड़े आदरका बर्ताव किया और उनको खजानेमें ले गया। उनको सोना, चाँदी, मुहरें आदि खूब दिये। लेनेमें तो उन्होंने खूब धन ले लिया, पर पासमें बोझ ज्यादा हो गया। अब क्या करें? कैसे ले जायँ? तो राजाने अपने आदमियोंसे कहा कि इनको पहुँचा दो। धनको सवारीमें रखवाया और सिपाहियोंको साथमें भेज दिया। वें जा रहे थे। रास्तेमें उन सिपाहियोंमें जो बड़ा अफसर था, उसके मनमें आया कि पण्डितजी किसीको कभी देनेके लिये कहते ही नहीं और आज देनेके लिये कह दिया, तो बात क्या है! उसने उनसे पूछा कि महाराज, आप बताओ कि आपने पण्डितजीका क्या उपकार किया है? पण्डितजीके साथ आपका क्या सम्बन्ध है? आज हमने पण्डितजीके स्वभावसे विरुद्ध बात देखी है। बहुत वर्षोंसे देखता हूँ कि पण्डितजी किसीको ऐसा नहीं कहते कि तुम इसको दे दो, पर आपके लिये ऐसा कहा, तो बात क्या है? वे चारों आपसमें

एक-दूसरेको देखने लगे, फिर बोले कि 'ये एक दिन मौतके मुँहमें जा रहे थे तो हमने इनको मौतसे बचाया। इनके हाथ ही कटे, नहीं तो गला कट जाता। उस दिनका ये बदला चुका रहे हैं।' उनकी इतनी बात पृथ्वी सह नहीं सकी। पृथ्वी फट गयी और वे चारों पृथ्वीमें समा गये! सिपाहीलोगोंको बड़ी मुश्किल हो गयी कि अब धन कहाँ ले जायँ! वे तो पृथ्वीमें समा गये! अब वे वहाँसे लौट पड़े और आकर सब बात बतायी। उनकी बात सुनकर पण्डितजी जोर-जोरसे रोने लग गये! रोते-राते आँसू पोंछने लगे तो उनके हाथ साबुत हो गये। यह देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या तमाशा है। हाथ कैसे आ गये? राजाने सोचा कि वे इनके कोई घनिष्ठ मित्र थे, इसलिये उनके मरनेसे पण्डितजी रोते हैं। उनसे पूछा कि महाराज, बताओ तो सही, बात क्या है? हमारेको तो आप उपदेश देते हैं कि शोक नहीं करना चाहिये, चिन्ता नहीं करनी चाहिये, फिर मित्रोंका नाश होनेसे आप क्यों रोते हैं? शोक क्यों करते हैं? तो वे बोले कि ये जो चार आदमी थे, इन्होंने ही मेरेसे धन छीन लिया और हाथ काट दिये। राजाने बड़ा आश्चर्य किया और कहा कि महाराज, हाथ काटनेवालोंको आपने मित्र कैसे कहा? जयदेव बोले कि देखो राजन्! एक जबानसे उपदेश देता है और एक क्रियासे उपदेश देता है। क्रियासे उपदेश देनेवाला ऊँचा होता है। मैंने जिन हाथोंसे आपसे धन लिया, रत्न लिये, वे हाथ काट देने चाहिये। यह काम उन्होंने कर दिया और धन भी ले गये। अतः उन्होंने मेरा उपकार किया, मेरेपर कृपा की,

जिससे मेरा पाप कट गया। इसलिये वे मेरे मित्र हुए। रोया मैं इस बातके लिये कि लोग मेरेको सन्त कहते हैं, अच्छा पुरुष कहते हैं, पण्डित कहते हैं, धर्मात्मा कहते हैं और मेरे कारणसे उन बेचारोंके प्राण चले गये! अतः मैंने भगवान्से रो करके प्रार्थना की कि हे नाथ! मेरेको लोग अच्छा आदमी कहते हैं तो बड़ी गलती करते हैं। मेरे कारणसे आज चार आदमी मर गये तो मैं अच्छा कैसे हुआ? मैं बड़ा दुष्ट हूँ। हे नाथ! मेरा कसूर माफ करो। अब मैं क्या करूँ? मेरे हाथकी बात कुछ रही नहीं; अतः प्रार्थनाके सिवा और मैं क्या कर सकता हूँ। राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला कि महाराज, आप अपनेको अपराधी मानते हो कि चार आदमी मेरे कारण मर गये, तो फिर आपके हाथ कैसे आ गये? वे बोले कि भगवान् अपने जनके अपराधोंको, पापोंको, अवगुणोंको देखते ही नहीं! उन्होंने कृपा की तो हाथ आ गये! राजाने कहा कि महाराज! उन्होंने आपको इतना दुःख दिया तो आपने उनको धन क्यों दिलवाया। वे बोले कि देखो राजन्! उनको धनका लोभ था और लोभ होनेसे वे और किसीके हाथ काटेंगे; अतः विचार किया कि आप धन देना ही चाहते हैं तो उनको इतना धन दे दिया जाय कि जिससे बेचारोंको कभी किसी निर्दोषकी हत्या न करनी पड़े। मैं तो सदोष था, इसलिये मुझे दुःख दे दिया। परन्तु वे किसी निर्दोषको दुःख न दे दें, इसलिये मैंने उनको भरपेट धन दिलवा दिया। राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ! उसने कहा कि आपने मेरेको पहले क्यों नहीं बताया? वे बोले कि

महाराज! अगर पहले बताता तो आप उनको दण्ड देते। मैं उनको दण्ड नहीं दिलाना चाहता था। मैं तो उनकी सहायता करना चाहता था; क्योंकि उन्होंने मेरे पापोंका नाश किया, मेरेको क्रियात्मक उपदेश दिया। मैंने तो अपने पापोंका फल भोगा, इसलिये मेरे हाथ कट गये। नहीं तो भगवान्के दरबारमें, भगवान्के रहते हुए किसीको अनुचित दण्ड दे सकता है? कोई नहीं दे सकता। यह तो उनका उपकार है कि मेरे पापोंका फल भुगताकर मेरेको शुद्ध कर दिया।

इस कथासे सिद्ध होता है, सुख या दुःखको देनेवाला कोई दूसरा नहीं है; कोई दूसरा सुख-दुःख देता है—यह समझना कुबुद्धि है—**'सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा'** (अध्यात्म० २। ६। ६)। दुःख तो हमारे प्रारब्धसे मिलता है, पर उसमें कोई निमित्त बन जाता है तो उसपर दया आनी चाहिये कि बेचारा मुफ्तमें ही पापका भागी बन गया!

२३. भगवान् भावके भूखे हैं

गृहस्थमें रहनेवाले एक बड़े अच्छे त्यागी पण्डित थे। त्याग साधुओंका ठेका नहीं है। गृहस्थमें, साधुमें, सभीमें त्याग हो सकता है। त्याग साधुवेषमें ही हो; ऐसी बात नहीं है। पण्डितजी बड़े विचारवान् थे। भागवतकी कथा कहा करते थे। एक धनी आदमीने उनसे दीक्षा ली और कहा—'महाराज! कोई सेवा बताओ।' धनी आदमी बहुत पीछे पड़ गया तो कहा—'तुम्हें रामजीने धन दिया है तो

सदाव्रत खोल दो।' '**अन्नदानं महादानम्**।' 'भूखोंको भोजन कराओ, भूखोंको अन्न दो।' ऐसा महाराजने कह दिया। वह श्रद्धालु था। उसने शुरू कर दिया। दान देते हुए कई दिन बीत गये। मनुष्य सावधान नहीं रहता है तो हरेक जगह अभिमान आकर पकड़ लेता है। उसे देनेका भी अभिमान हो गया कि 'मैं इतने लोगोंको अन्न देता हूँ।' अभिमान होनेसे नियत समयपर तो अन्न देता और दूसरे समयमें कोई माँगने आता तो उसकी बड़ी ताड़ना करता; तिरस्कार, अपमान करता, क्रोधमें आकर अतिथियोंकी ताड़ना करते हुए कह देता कि सभी भूखे हो गये, सभी आ जाते हैं। सबकी नीयत खराब हो गयी। इस प्रकार न जाने क्या-क्या गाली देता।

पण्डितजी महाराजने वहाँके लोगोंसे पूछा कि सदाव्रतका काम कैसा हो रहा है? लोगोंने जवाब दिया—'महाराजजी! अन्न तो देता है, पर अपमान-तिरस्कार बहुत करता है। एक दिन पण्डितजी महाराज स्वयं ग्यारह बजे रात्रिमें उस सेठके घरपर पहुँचे। दरवाजा खटखटाया और आवाज लगाने लगे, 'सेठ! कुछ खानेको मिल जाय।' भीतरसे सेठका उत्तर मिला—'जाओ, जाओ, अभी वक्त नहीं है।' तो फिर बोले—'कुछ भी मिल जाय, ठंडी-बासी मिल जाय। कलकी बची हुई रोटी मिल जाय। भूख मिटानेके लिये थोड़ा कुछ भी मिल जाय।' तो सेठ बोला—'अभी नहीं है।' पण्डितजी जानकर तंग करनेके लिये गये थे। बार-बार देनेके लिये कहा तो सेठ उत्तेजित हो गया। इसलिये जोरसे बोला—'रातमें भी पिण्ड छोड़ते नहीं, दुःख दे रहे हो। कह दिया ठीक तरहसे,

अभी नहीं मिलेगा, जाओ।' पण्डितजी फिर बोले—'सेठजी! थोड़ा ही मिल जाय, कुछ खानेको मिल जाय।' अब सेठजीको क्रोध आ गया। जोरसे बोले—'कैसे आदमी हैं?' दरवाजा खोलकर देखा तो पण्डितजी महाराज स्वयं खड़े हैं। उनको देखकर कहता है—'महाराजजी! आप थे?' पण्डितजीने कहा—'मेरेको ही देता है क्या?', 'मैं माँगूँ तो ही तू देगा क्या?', 'महाराज! आपको मैंने पहचाना नहीं।' 'सीधी बात है, मेरेको पहचान लेता तो अन्न देता। दूसरोंको ऐसे ही देता है क्या? यह कोई देना थोड़े ही हुआ। तूने कितनोंका अपमान–तिरस्कार कर दिया? इससे कितना नुकसान होता है?' सेठने कहा कि 'महाराज! अब नहीं करूँगा।' अब कोई माँगने आ जाय तो सेठजीको पण्डितजी याद आ जाते। इसलिये सब समय, सब वेषमें भगवान्‌को देखो। गरीबका वेष धारण कर, अभावग्रस्तका वेष धारण कर भगवान् आये हैं। क्या पता किस वेषमें साक्षात् नारायण आ जायँ। इस प्रकार आदरसे देगा तो भगवान् वहाँ आ जाते हैं। भगवान् तो भावके भूखे हैं। भाव आपके क्रोधका है तो वहाँ भगवान् कैसे आवेंगे। आपके देनेका भाव होता है तो भगवान् लेनेको लालायित रहते हैं। भगवान् तो प्रेम चाहते हैं। प्रेमसे, आदरसे दिया हुआ भगवान्‌को बहुत प्रिय लगता है। *'दुर्योधनका मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खायो।'*

२४. मिले हुए अधिकारका सदुपयोग

एक हाथी था। वह मर गया तो धर्मराजके यहाँ पहुँचा। धर्मराजने उससे पूछा—'अरे! तुझे इतना बड़ा शरीर दिया, फिर भी तू मनुष्यके वशमें हो गया! तेरे एक पैर जितना था मनुष्य, उसके वशमें तू हो गया!' वह हाथी बोला—'महाराज! यह मनुष्य ऐसा ही है। बड़े-बड़े इसके वशमें हो जाते हैं!' धर्मराजने कहा—'हमारे यहाँ तो अनगिनत आदमी आते हैं!' हाथीने जवाब दिया—'आपके यहाँ मुर्दे आते हैं, जो जीता आदमी आये तो पता लगे!' धर्मराजने दूतोंसे कहा—'अरे! एक जीता आदमी ले आओ।' दूतोंने कहा—'ठीक है'।

दूत घूमते ही रहते थे। गर्मीके दिनोंमें उन्होंने देखा कि छतके ऊपर एक आदमी सोया हुआ है। दूतोंने उसकी खाट उठा ली और ले चले। उस आदमीकी नींद खुली तो देखा कि बात क्या है! वह कायस्थ था। ग्रन्थ लिखा करता था। ग्रन्थोंमें धर्मराजके दूतोंके लक्षण आते हैं। उसने देखा कि ये तो धर्मराजके दूत उठाये ले जा रहे हैं! उसने जेबसे कागज और कलम निकाली। कागजपर कुछ लिखा और जेबमें रख लिया। उसने सोचा कि हम कुछ चीं-चपड़ करेंगे तो गिर जायँगे, हड्डियाँ बिखर जायँगी! वह बेचारा खाटपर पड़ा रहा कि जो होगा, देखा जायगा।

सुबह होते ही दूत पहुँच गये। धर्मराजकी सभा लगी हुई थी। दूतोंने खाट नीचे रखी। उस कायस्थने तुरन्त जेबसे कागज निकाला और दूतोंको दे दिया कि धर्मराजको दे दो। उसपर विष्णुभगवान्‌का नाम लिखा था। दूतोंने वह कागज धर्मराजको दे दिया। धर्मराजने पत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—

'धर्मराजजीसे नारायणकी यथायोग्य। यह हमारा मुनीम आपके पास आता है। इसके द्वारा ही सब काम कराना।' दस्तखत—

नारायण, वैकुण्ठपुरी।

पत्र पढ़कर धर्मराजने अपनी गद्दी छोड़ दी और बोले—'आइये महाराज! गद्दीपर बैठो।' धर्मराजने कायस्थको गद्दीपर बैठा दिया कि भगवान्‌का हुक्म है।

अब दूत दूसरे आदमीको लाये। कायस्थ बोला—'यह कौन है?' दूत—'महाराज! यह डाका डालनेवाला है। बहुतोंको लूट लिया, बहुतोंको मार दिया। इसको क्या दण्ड दिया जाय?' कायस्थ—'इसको वैकुण्ठमें भेजो।'

'यह कौन है?'

'महाराज! यह दूध बेचनेवाली है। इसने पानी मिलाकर दूध बेचा, जिससे बच्चोंके पेट बढ़ गये, वे बीमार हो गये। इसका क्या करें?'

'इसको भी वैकुण्ठमें भेजो।' 'यह कौन है?'

'इसने झूठी गवाही देकर बेचारे लोगोंको फँसा दिया। इसका क्या किया जाय?'

'अरे, पूछते क्या हो? वैकुण्ठमें भेजो।'

अब व्यभिचारी आये, पापी आये, हिंसा करनेवाला आये, कोई भी आये, उसके लिये एक ही आज्ञा कि 'वैकुण्ठमें भेजो।' अब धर्मराज क्या करें? गद्दीपर बैठा मालिक जो कह रहा है, वही ठीक! वहाँ वैकुण्ठमें जानेवालोंकी कतार लग गयी। भगवान्‌ने देखा कि अरे! इतने लोग यहाँ कैसे आ रहे

हैं? कहीं मृत्युलोकमें कोई महात्मा प्रकट हो गये? बात क्या है, जो सभीको वैकुण्ठमें भेज रहे हैं? कहाँसे आ रहे हैं? देखा कि ये तो धर्मराजके यहाँसे आ रहे हैं।

भगवान् धर्मराजके यहाँ पहुँचे। भगवान्‌को देखकर सब खड़े हो गये। धर्मराज भी खड़े हो गये। वह कायस्थ भी खड़ा हो गया। भगवान्‌ने पूछा—'धर्मराज! आपने सबको वैकुण्ठ भेज दिया, बात क्या है? क्या इतने लोग भक्त हो गये?'

धर्मराज—'प्रभो! यह मेरा काम नहीं है। आपने जो मुनीम भेजा है, उसका काम है।'

भगवान्‌ने कायस्थसे पूछा—'तुझे किसने भेजा?'

कायस्थ—'आपने महाराज!'

'हमने कैसे भेजा?'

'क्या मेरे बापके हाथकी बात है, जो यहाँ आता? आपने ही तो भेजा है। आपकी मरजीके बिना कोई काम होता है क्या? क्या यह मेरे बलसे हुआ है?'

'ठीक है, पर तूने यह क्या किया?'

'मैंने क्या किया महाराज?'

'तूने सबको वैकुण्ठमें भेज दिया!'

'यदि वैकुण्ठमें भेजना खराब काम है तो जितने सन्त-महात्मा हैं, उनको दण्ड दिया जाय! यदि यह खराब काम नहीं है तो उलाहना किस बातकी? इसपर भी आपको यह पसन्द न हो तो सबको वापिस भेज दो। परन्तु भगवद्गीतामें लिखा यह श्लोक आपको निकालना पड़ेगा—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' (१५। ६) 'मेरे धाममें

जाकर पीछे लौटकर कोई नहीं आता।''

'बात तो ठीक है। कितना ही बड़ा पापी हो, यदि वह वैकुण्ठमें चला जाय तो पीछे लौटकर थोड़े ही आयेगा! उसके पाप तो सब नष्ट हो गये। पर यह काम तूने क्यों किया?'

'मैंने क्या किया महाराज? मेरे हाथमें जब बात आयेगी तो मैं यही करूँगा, सबको वैकुण्ठ भेजूँगा। मैं किसीको दण्ड क्यों दूँ? मैं जानता हूँ कि थोड़ी देरके लिये गद्दी मिली है, तो फिर अच्छा काम क्यों न करूँ? लोगोंका उद्धार करना खराब काम है क्या?'

भगवान्‌ने धर्मराजसे पूछा—'धर्मराज! तुमने इसको गद्दी कैसे दे दी?'

धर्मराज बोले—'महाराज! देखिये, आपका कागज आया है। नीचे साफ-साफ आपके दस्तखत हैं।'

भगवान्‌ने कायस्थसे पूछा—'क्यों रे, यह कागज मैंने कब दिया तेरेको?'

कायस्थ बोला—'आपने गीतामें कहा है—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (१५। १५) 'मैं सबके हृदयमें रहता हूँ'; अतः हृदयसे आज्ञा आयी कि कागज लिख दो तो मैंने लिख दिया। हुक्म तो आपका ही हुआ! यदि आप इसको मेरा मानते हैं तो गीतामेंसे उपर्युक्त बात निकाल दीजिये!'

भगवान्‌ने कहा—'ठीक।' धर्मराजसे पूछा—'अरे धर्मराज! बात क्या है? यह कैसे आया?'

धर्मराज बोले—'महाराज! कैसे क्या आया, आपका पत्र ले आया!' दूतोंसे पूछा—'यह बात कैसे हुई?'

दूत बोले—'महाराज! आपने ही तो एक दिन कहा था कि एक जीवित आदमी लाना।'

धर्मराज—'तो वह यही है क्या? अरे, परिचय तो कराते!'

दूत—'हम क्या परिचय कराते महाराज! आपने तो कागज लिया और इसको गद्दीपर बैठा दिया। हमने सोचा कि परिचय होगा, फिर हमारी हिम्मत कैसे होती बोलनेकी?'

हाथी वहाँ खड़ा सब देख रहा था, बोला—'जै रामजीकी! आपने कहा था कि तू कैसे आदमीके वशमें हो गया? मैं क्या वशमें हो गया, वशमें तो धर्मराज हो गये और भगवान् हो गये! यह काले माथेवाला आदमी बड़ा विचित्र है महाराज! यह चाहे तो बड़ी उथल-पुथल कर दे! यह तो खुद ही संसारमें फँस गया!'

भगवान्‌ने कहा—'अच्छा, जो हुआ सो हुआ, अब तो नीचे चला जा।'

कायस्थ बोला—'गीतामें आपने कहा है—'**मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते**' (८। १६) 'मेरेको प्राप्त होकर पुनः जन्म नहीं लेता' तो बतायें, मैं आपको प्राप्त हुआ कि नहीं?'

भगवान्—'अच्छा भाई, तू चल मेरे साथ।'

कायस्थ—'महाराज! केवल मैं ही चलूँ? हाथी पीछे रहेगा बेचारा? इसकी कृपासे ही तो मैं यहाँ आया। इसको भी तो लो साथमें!'

हाथी बोला—'मेरे बहुत-से भाई यहीं नरकोंमें बैठे हैं, सबको साथ ले लो।'

भगवान् बोले—'चलो भाई, सबको ले लो!' भगवान्‌के आनेसे हाथीका भी कल्याण हो गया, कायस्थका भी कल्याण हो गया और अन्य जीवोंका भी कल्याण हो गया!

यह कहानी तो कल्पित है, पर इसका सिद्धान्त पक्का है कि अपने हाथमें कोई अधिकार आये तो सबका भला करो। जितना कर सको, उतना भला करो। अपनी तरफसे किसीका बुरा मत करो, किसीको दुःख मत दो। गीताका सिद्धान्त है—'**सर्वभूतहिते रताः**' (५। २५, १२। ४) 'प्राणिमात्रके हितमें प्रीति हो'। अधिकार हो, पद हो, थोड़े ही दिन रहनेवाला है। सदा रहनेवाला नहीं है। इसलिये सबके साथ अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो।

२५. सबके दाता राम

एक बारकी बात है। बादशाह अकबर कहीं जंगलमें शिकारके लिये गये। साथमें बहुत आदमी थे, पर दैवयोगसे जंगलमें अकेले भटक गये। आगे गये तो एक खेत दिखायी दिया। उस खेतमें पहुँचे और उस खेतके मालिकसे कहा—'भैया! मुझे भूख और प्यास बड़ी जोरसे लगी है। तुम कुछ खाने-पीनेको दे दो। मैं राज्यका आदमी हूँ।' उसने कहा—'ठीक, आप हमारे तो मालिक ही हो।' यह कहकर उसने भोजन करा दिया। खेतमें ऊख (गन्ना) थी, ऊखका रस पिला दिया। आराम करनेके लिये खटिया बिछा दी। इससे बादशाह बहुत राजी हुआ। उसको ऐसा लगा कि ऐसा बढ़िया शर्बत मैंने कभी नहीं पिया। जंगलमें रोटी भी बड़ी

मीठी लगती है फिर जिसमें भूख भी लगी हुई हो।

जब बादशाह वापिस जाने लगा तो उस किसानसे कहा—'कभी तुम्हारे काम पड़ जाय तो दिल्लीमें आ जाना, मेरा नाम अकबर है। किसीसे मेरा नाम पूछ लेना।' और फिर कहा—'कलम, दवात-कागज ला, तुझे कुछ लिख दूँ।' खेतमें न कलम है, न दवात है, न कागज है। खेतमें रहनेवाला बिचारा पढ़ा-लिखा तो था नहीं। फूटा हुआ मिट्टीका घड़ा था। वह सामने रख दिया और एक कोयला ले आया। बादशाहने घड़ेकी ठीकरीके भीतरमें लिख दिया। वह बेचारा पढ़ा-लिखा था नहीं। अकबरने कहा—'मेरेसे जब मिलने आओ, तब इसको साथ लेकर आ जाना।' उसने कहा—'ठीक है'। उसने उस लिखे हुए घड़ेके टुकड़ेको रख दिया। कई वर्षोंतक पड़ा रहा।

जब अकाल पड़ा और अनाज कुछ हुआ नहीं, तब बड़ी तंगी आ गयी। अपने लिये अन्न और गायों-भैंसोंके लिये घासतक नहीं रहा। दोनोंके लिये पानी नहीं रहा। तब स्त्रीने कहा—'राज्यका एक आदमी आया था न? उसने कहा था कि आवश्यकता पड़े तब दिल्ली आ जाना। उसके पास जाओ तो सही।' स्त्रीने बार-बार कहा तो ठीकरा लेकर वह वहाँसे चला। दिल्लीमें पहुँचा तो लोगोंसे पूछा—'अकबरियेका घर कौन-सा है?' अकबरका नाम सुनकर किसीने बता दिया। खास महलके दरवाजेपर जाकर पूछने लगा—'अकबरियेका घर यही है क्या?'

द्वारपालोंने डाँटकर कहा—कैसे बोलता है? ढंगसे बोला

कर। वह तो अपनी भाषामें सीधा बोला और उसने ठीकरी दिखाकर कहा—'जाकर कह दो एक आदमी आपसे मिलने आया है।' द्वारपाल चकरा गया कि बादशाह स्वयंने इसपर दस्तखत किये हैं। उसने जाकर कहा—'महाराज! एक ग्रामीण आदमी है, असभ्यतासे बोलता है। बोलनेका भी होश नहीं है। वह आपसे मिलना चाहता है।' उसे बुलाया, बादशाह ऊँचे सिंहासनपर बैठा था। उसने देखकर कहा—'ओ अकबरिया! तू तो बहुत ऊँचा बैठा है।' बादशाहने कहा—'आओ भाई! बैठो!' उसे बैठाया और कहा—'तू थोड़ी देर बैठ जा। मेरी नमाजका समय हो गया है, इसलिये मैं नमाज पढ़ लूँ।'

अब किसान देखता है कि उसने कपड़ा बिछाया है और वह उसपर उठता है, बैठता है। अकबरने जब नमाज पढ़ ली और आकर बैठा तो उस किसानने पूछा—'यह क्या कर रहे थे?' बादशाहने जवाब दिया—'परवर दिगारकी बंदगी कर रहा था।' किसानने कहा—'मैं तो समझा नहीं।' तो कहा—'ईश्वर है न, यानी उस परमात्माकी हाजिरी भर रहा था।' 'कितनी बार करते हो?' 'पाँच बार।' 'पाँच बार उठते, बैठते हो। क्यों?' 'जिसने इतना दे रखा है उसकी हाजिरी भरता हूँ।'

'मैं तो एक बार भी हाजिरी नहीं भरता हूँ, फिर भी सब दे रखा है और दे रहा है। तुम्हें पाँच बार करनी पड़ती है। अच्छी बात, जैरामजीकी। अब जाता हूँ।' ऐसा कहकर जाने लगा तो पूछा कि क्यों आया था? 'मेरी स्त्रीने कह दिया

था कि तुम दिल्ली जाओ तब आया और यहाँ तुमको देखा, तुम तो पाँच बार नमाज पढ़ते हो। जब आपको परमात्मासे मिला तो अब आपसे मैं क्या लूँ? मुझे कुछ करना नहीं पड़ता है तो भी वह परमात्मा मुझे देता है। अब तेरेसे क्या लेना है?'

'अरे भैया, तुझे जो चाहिये सो ले ले' बादशाहने कहा—'नहीं! इतनी मेहनतसे तुम्हें मिली हुई चीज मैं मुफ्तमें कैसे ले लूँ?' ऐसे कहकर अपने घर चला आया। स्त्रीने पूछा—'क्या हुआ?' उसने कहा—'अपने प्रभुको याद करो। जो सबका मालिक है, वही सबको देता है। वह हमारा, उनका, सबका मालिक है। उसमें कोई पक्षपात नहीं है। वह सबका है तो हमारा भी है। अब अपने उस राज्यके आदमीसे क्या माँगें? जो कि स्वयं भी माँगता है। इसलिये भगवान्का भरोसा रखो, उनका नाम लो।'

कई चोर मिलकर चोरी करने गये। बाहर उस किसानका घर था, उसके पास वे चोर छिपकर रहे। उस घरमें वे दोनों पति-पत्नी आपसमें बात कर रहे थे। स्त्री पतिसे बोली—'दिल्ली गये और कुछ लाये नहीं।' तो उसने कहा—'क्या लावें? हमारे पास कुछ था ही नहीं।' 'कुछ कमाते!' इसपर पतिने उत्तर दिया—'अब तो भगवान् देंगे तब ही लेंगे। भगवान्पर ही हमने छोड़ दिया।' 'भगवान्पर छोड़ दिया तो कुछ काम-धंधा तो करो।' उसने कहा—'काम-धंधा किये बिना भी धन मिलता है, पर मैं लेता नहीं हूँ। ठाकुरजीकी मर्जी होगी तो घर बैठे भेज देंगे।' इस प्रकार स्त्री-पुरुष आपसमें बातचीत

कर रहे थे। उसने अपनी स्त्रीको धीरज बँधाते हुए

कहा—'अब वर्षा भी हो गयी है, खेती करेंगे, सब काम ठीक हो जायगा। कोई चिन्ताकी बात नहीं है। मैं तो भगवान्के भरोसे रहता हूँ, मैं लेता नहीं हूँ। भगवान्के देनेके बहुत तरीके हैं। छप्पर फाड़कर देते हैं।'

उसने कहा—'सुन! आजकी ही बात बताऊँ। मैं नदी-किनारे गया। नदीमें बाढ़ आ गयी। पानी बहुत बढ़ गया, जिससे किनारा कट गया। वहाँ शौच जाकर हाथ धोने लगा तो मेरेको दिखा, वहाँ कोई बर्तन है। ऊपरसे रेत निकल गयी थी और ढक्कन दिया हुआ एक चरु पड़ा था। उसको मैंने खोलकर देखा तो उसमें सोना-चाँदी, अशर्फियाँ भरी हुई थीं। बहुत धन था। मैंने विचार किया कि अपने तो यह लेना नहीं है। ठाकुरजी स्वयं भेजेंगे तब लेंगे। पता नहीं यह किसका है? इसलिये ढक्कन लगाकर मैं वापिस आ गया।' स्त्रीने पूछा कि 'वह कहाँपर कौन-सी जगह है?' तो उसने सब बता दिया कि 'ऐसे वहाँ एक जालका वृक्ष है, उसके पासमें है?'

चोर इनकी बातोंको सुन रहे थे। उन्होंने सोचा कि यह किसान तो पागल है। अपने तो वहीं चलो और कहीं चोरी करेंगे तो कहीं पकड़े जायँगे, धन वहाँ मिल ही जायगा। वे वहीं गये, जहाँ किसानने हाथ धोये थे। ढक्कन ढकते समय उस किसानसे कुछ भूल हो गयी थी। ढक्कन कुछ खुला रह गया। उसके जानेके बाद एक साँप आकर उस बर्तनके भीतर बैठ गया। ज्यों ही चोरोंने उसका ढक्कन खोला कि साँपने फुंकार मारी। उन्होंने जोरसे ढक्कन बंद कर दिया। अब चोरोंने

विचार किया कि उस किसानने हमको देख लिया होगा। हमें मारनेके लिये ही उसने यह सब बात कही थी। इस चरुमें न जाने कितने जहरीले साँप-बिच्छू भरे हैं। इस चरुको उसके घरमें ही गिरा दो, जिससे ये साँप-बिच्छू उनको काटकर मार देंगे।

अब इस चरुको बाँधकर उसी किसानके घरपर ले गये। वे दोनों सो गये थे। उन चोरोंने छप्पर फाड़कर चरु उलटा कर दिया, जिससे सारा माल घरमें गिर गया और स्वयं आप भाग गये। ऊपरसे पहले साँप गिरा, उसपर सोनेके सामानसहित वह चरु गिरा। इससे साँप तो वहीं दबकर मर गया। इस प्रकार भगवान् छप्पर फाड़कर देते हैं। सबेरे जब दोनों जगे और घरमें देखा तो धनका ढेर लगा हुआ है। अब किसीसे क्यों माँगे? भगवान् किस तरहसे देते हैं; इसका पता ही नहीं लगता। जो भगवान्‌का भरोसा रखता है, वह कभी भी खाली नहीं जाता। भूखा रह सकता है, नंगा रह सकता है, लोगोंमें अपमान हो सकता है, परंतु उसके मनमें दुःख नहीं हो सकता। जो भगवान्‌पर पूरा भरोसा रखता है, वह हर हालतमें प्रसन्न रहता है।

२६. मुक्तिका उपाय

पुराण भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य निधि है। पुराणोंमें मानव–जीवनको ऊँचा उठानेवाली अनेक सरल, सरस, सुन्दर और विचित्र–विचित्र कथाएँ भरी पड़ी हैं। उन कथाओंका तात्पर्य राग–द्वेषरहित होकर अपने कर्तव्यका पालन करने और भगवान्‌को प्राप्त करनेमें ही है। पद्मपुराणके भूमिखण्डमें ऐसी ही एक कथा आती है।

अमरकण्टक तीर्थमें सोमशर्मा नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। उनके कोई पुत्र नहीं था और धनका भी उनके पास अभाव था। पुत्र और धनका अभाव होनेके कारण सोमशर्मा बहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन अपने पतिको अत्यन्त चिन्तित देखकर सुमनाने कहा कि 'प्राणनाथ! आप चिन्ताको छोड़ दीजिये; क्योंकि चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है। स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। इस संसारमें ऋणानुबन्धसे अर्थात् किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जीवका जन्म होता है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, सेवक आदि सब लोग अपने–अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वीपर जन्म लेकर हमें प्राप्त होते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी भी ऋणानुबन्धसे ही प्राप्त होते हैं।'

'संसारमें शत्रु, मित्र और उदासीन—ऐसे तीन प्रकारके पुत्र होते हैं। शत्रुस्वभाववाले पुत्रके दो भेद हैं। पहला, किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेसे ऋण लिया, पर उसको चुकाया नहीं तो दूसरे जन्ममें ऋण देनेवाला उस ऋणीका पुत्र बनता है। दूसरा,

किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेके पास अपनी धरोहर रखी, पर जब धरोहर देनेका समय आया, तब उसने धरोहर लौटायी नहीं, हड़प ली तो दूसरे जन्ममें धरोहरका स्वामी उस धरोहर हड़पनेवालेका पुत्र बनता है। ये दोनों ही प्रकारके पुत्र बचपनसे माता-पिताके साथ वैर रखते हैं और उसके साथ शत्रुकी तरह बर्ताव करते हैं। बड़े होनेपर वे माता-पिताकी सम्पत्तिको व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। जब उनका विवाह हो जाता है, तब वे माता-पितासे कहते हैं कि यह घर, खेत आदि सब मेरा है, तुमलोग मुझे मना करनेवाले कौन हो? इस तरह वे कई प्रकारसे माता-पिताको कष्ट देते हैं। माता-पिताकी मृत्युके बाद वे उनके लिये श्राद्ध-तर्पण आदि भी नहीं करते। मित्रस्वभाववाला पुत्र बचपनसे ही माता-पिताका हितैषी होता है। वह माता-पिताको सदा संतुष्ट रखता है और स्नेहसे, मीठी वाणीसे उनको सदा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके बाद वह उनके लिये श्राद्ध-तर्पण, तीर्थयात्रा, दान आदि भी करता है। उदासीनस्वभाववाला पुत्र सदा उदासीनभावसे रहता है। वह न कुछ देता है और न कुछ लेता है। वह न रुष्ट होता है, न संतुष्ट; न सुख देता है, न दुःख*। इस प्रकार जैसे पुत्र तीन प्रकारके होते हैं, ऐसे ही माता, पिता, पत्नी, पुत्र, भाई आदि और नौकर, पड़ोसी, मित्र तथा गाय, भैंस, घोड़े आदि भी तीन प्रकारके

* कोई व्यक्ति किसी सन्तकी खूब लगनसे सेवा करता है। अन्तसमयमें किसी कारणसे सन्तको उस सेवककी याद आ जाय तो वह उस सेवकके घरमें पुत्ररूपसे जन्म लेता है और उदासीनभावसे रहता है।

(शत्रु, मित्र और उदासीन) होते हैं। इन सबके साथ हमारा सम्बन्ध ऋणानुबन्धसे ही होता है।'

'प्रियतम! जिस मनुष्यको जितना धन मिलता है, उसको बिना परिश्रम किये ही उतना धन मिल जाता है और जब धन जानेका समय आता है, तब कितनी ही रक्षा करनेपर भी वह चला जाता है—ऐसा समझकर आपको धनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वास्तवमें धर्मके पालनसे ही पुत्र और धनकी प्राप्ति होती है। धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्य ही संसारमें सुख पाते हैं। इसलिये आप धर्मका अनुष्ठान करें। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे धर्मका आचरण करता है, उसके लिये संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।'

ऐसा कहनेके बाद सुमनाने विस्तारसे धर्मका स्वरूप तथा उसके अङ्गोंका वर्णन किया। उसको सुनकर सोमशर्माने प्रश्न किया कि 'तुम्हें इन सब गहरी बातोंका ज्ञान कैसे हुआ?' सुमनाने कहा—'आप जानते ही हैं कि मेरे पिताजी धर्मात्मा और शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले थे, जिससे साधुलोग भी उनका आदर किया करते थे। वे खुद भी अच्छे-अच्छे सन्तोंके पास जाया करते तथा सत्सङ्ग किया करते थे। मैं उनकी एक ही बेटी होनेके कारण वे मेरेपर बड़ा स्नेह रखा करते तथा अपने साथ मुझे भी सत्संगमें ले जाया करते थे। इस प्रकार सत्सङ्गके प्रभावसे मुझे भी धर्मके तत्त्वका ज्ञान हो गया।'

यह सब सुनकर सोमशर्माने पुत्रकी प्राप्तिका उपाय पूछा। सुमनाने कहा कि 'आप महामुनि वसिष्ठजीके पास जायँ और

उनसे प्रार्थना करें। उनकी कृपासे आपको गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है।' पत्नीके ऐसा कहनेपर सोमशर्मा वसिष्ठजीके पास गये। उन्होंने वसिष्ठजीसे पूछा कि 'किस पापके कारण मुझे पुत्र और धनके अभावका कष्ट भोगना पड़ रहा है?' वसिष्ठजीने कहा—'पूर्वजन्ममें तुम बड़े लोभी थे तथा दूसरोंके साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने कभी तीर्थयात्रा, देवपूजन, दान आदि शुभकर्म नहीं किये। श्राद्धका दिन आनेपर तुम घरसे बाहर चले जाते थे। धन ही तुम्हारा सब कुछ था। तुमने धर्मको छोड़कर धनका ही आश्रय ले रखा था। तुम रात-दिन धनकी ही चिन्तामें लगे रहते थे। तुम्हें अरबों-खरबों स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हो गयीं, फिर भी तुम्हारी तृष्णा कम नहीं हुई, प्रत्युत बढ़ती ही रही। तुमने जीवनमें जितना धन कमाया, वह सब जमीनमें गाड़ दिया। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये; किंतु तुमने उनको न तो धन दिया और न धनका पता ही बताया। धनके लोभमें आकर तुमने पुत्रका स्नेह भी छोड़ दिया। इन्हीं कर्मोंके कारण तुम इस जन्ममें दरिद्र और पुत्रहीन हुए हो। हाँ, एक बार तुमने घरपर अतिथि-रूपसे आये एक विष्णुभक्त और धर्मात्मा ब्राह्मणकी प्रसन्नतापूर्वक सेवा की। उनके साथ तुमने अपनी स्त्रीसहित एकादशीव्रत रखा और भगवान् विष्णुका पूजन भी किया। इस कारण तुम्हें उत्तम ब्राह्मणवंशमें जन्म मिला है। विप्रवर! उत्तम स्त्री, पुत्र, कुल, राज्य, सुख, मोक्ष आदि दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति भगवान् विष्णुकी कृपासे ही होती है। अतः तुम भगवान् विष्णुकी ही शरणमें जाओ और उन्हींका भजन करो।'

वसिष्ठजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर सोमशर्मा अपनी स्त्री सुमनाके साथ बड़ी तत्परतासे भगवान्‌के भजनमें लग गये। उठते, बैठते, चलते, सोते आदि सब समयमें उनकी दृष्टि भगवान्‌की तरफ ही रहने लगी। बड़े-बड़े विघ्न आनेपर भी वे अपने साधनसे विचलित नहीं हुए। इस प्रकार उनकी लगनको देखकर भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान्‌के वरदानसे उनको मनुष्यलोकके उत्तम भोगोंकी और भगवद्भक्त तथा धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति हो गयी।

सोमशर्माके पुत्रका नाम सुव्रत था। सुव्रत बचपनसे ही भगवान्‌का अनन्य भक्त था। खेल खेलते समय भी उसका मन भगवान् विष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। जब माता सुमना उससे कहती कि 'बेटा! तुझे भूख लगी होगी, कुछ खा ले' तब वह कहता कि 'माँ भगवान्‌का ध्यान महान् अमृतके समान है, मैं तो उसीसे तृप्त रहता हूँ!' जब उसके सामने मिठाई आती तो वह उसको भगवान्‌के ही अर्पण कर देता और कहता कि 'इस अन्नसे भगवान् तृप्त हों।' जब वह सोने लगता, तब भगवान्‌का चिन्तन करते हुए कहता कि 'मैं योगनिद्रापरायण भगवान् कृष्णकी शरण लेता हूँ।' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह भगवान्‌के चिन्तनमें लगा रहता और सब वस्तुओंको भगवान्‌के अर्पण करता रहता। युवावस्था आनेपर भी वह भोगोंमें आसक्त नहीं हुआ, प्रत्युत भोगोंका त्याग करके सर्वथा भगवान्‌के भजनमें ही लग गया। उसकी ऐसी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान्‌ने

उससे वर माँगनेके लिये कहा तो वह बोला—'श्रीकृष्ण! अगर आप मेरेपर प्रसन्न हैं तो मेरे माता-पिताको सशरीर अपने परमधाममें पहुँचा दें और मेरे साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलें।' भगवान्‌ने सुव्रतकी भक्तिसे संतुष्ट होकर उसको उत्तम वरदान दे दिया। इस प्रकार पुत्रकी भक्तिके प्रभावसे सोमशर्मा और सुमना भी भगवद्धामको प्राप्त हो गये।

इस कथामें विशेष बात यह आयी है कि संसारमें किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जन्म होता है; क्योंकि जीवने अनेक लोगोंसे लिया है और अनेक लोगोंको दिया है। लेन-देनका यह व्यवहार अनेक जन्मोंसे चला आ रहा है और इसको बंद किये बिना जन्म-मरणसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

संसारमें जिनसे हमारा सम्बन्ध होता है, वे माता, पिता, स्त्री, पुत्र तथा पशु-पक्षी आदि सब लेन-देनके लिये ही आये हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह उनमें मोह-ममता न करके अपने कर्तव्यका पालन करे अर्थात् उनकी सेवा करे, उन्हें यथाशक्ति सुख पहुँचाये। यहाँ यह शंका हो सकती है कि अगर हम दूसरेके साथ शत्रुताका बर्ताव करते हैं तो इसका दोष हमें क्यों लगता है; क्योंकि हम तो ऐसा व्यवहार पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे ही करते हैं? इसका समाधान यह है कि मनुष्यशरीर विवेकप्रधान है। अतः अपने विवेकको महत्त्व देकर हमारे साथ बुरा व्यवहार करनेवालेको हम माफ

कर सकते हैं और बदलेमें उससे अच्छा व्यवहार कर सकते

हैं*। मनुष्यशरीर बदला लेनेके लिये नहीं है, प्रत्युत जन्म-मरणसे सदाके लिये मुक्त होनेके लिये है। अगर हम पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे लेन-देनका व्यवहार करते रहेंगे तो हम कभी जन्म-मरणसे मुक्त हो ही नहीं सकेंगे। लेन-देनके इस व्यवहारको बंद करनेका उपाय है—निःस्वार्थभावसे दूसरोंके हितके लिये कर्म करना। दूसरोंके हितके लिये कर्म करनेसे पुराना ऋण समाप्त हो जाता है और बदलेमें कुछ न चाहनेसे नया ऋण उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार ऋणसे मुक्त होनेपर मनुष्य जन्म-मरणसे छूट जाता है।

अगर मनुष्य भक्त सुव्रतकी तरह सब प्रकारसे भगवान्‌के ही भजनमें लग जाय तो उसके सभी ऋण समाप्त हो जाते हैं अर्थात् वह किसीका भी ऋणी नहीं रहता।† भगवद्भजनके प्रभावसे वह सभी ऋणोंसे मुक्त होकर सदाके लिये जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है और भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हो जाता है।

---

* उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
(मानस ५। ४१। ४)

† देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥
(श्रीमद्भा० ११। ५। ४१)

२७. खरी कमाई

एक बड़े सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मण थे। उनके घरमें प्राय: रोटी-कपड़ेकी तंगी रहती थी। साधारण निर्वाहमात्र होता था। वहाँके राजा बड़े धर्मात्मा थे। ब्राह्मणीने अपने पतिसे कई बार कहा कि आप एक बार तो राजासे मिल आओ, पर ब्राह्मण कहते कि वहाँ जानेके लिये मेरा मन नहीं करता। ब्राह्मणीने कहा कि मैं आपसे माँगनेके लिये नहीं कहती। वहाँ जाकर आप माँगो कुछ नहीं, केवल एक बार जाकर आ जाओ। ज्यादा कहा तो स्त्रीकी प्रसन्नताके लिये वे राजाके पास चले गये। राजाने उनको बड़े त्यागसे रहनेवाले गृहस्थ ब्राह्मण जानकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उनसे कहा कि आप एक दिन और पधारें। अभी तो आप मर्जीसे आये हैं, एक दिन आप मेरेपर कृपा करके मेरी मर्जीसे पधारें। ऐसा कहकर राजाने उनकी पूजा करके आनन्दपूर्वक उनको विदा कर दिया। घर आनेपर ब्राह्मणीने पूछा कि राजाने क्या दिया? ब्राह्मण बोले—दिया क्या, उन्होंने कहा कि एक दिन आप फिर आओ। ब्राह्मणीने सोचा कि अब माल मिलेगा। राजाने निमन्त्रण दिया है, इसलिये अब जरूर कुछ देंगे।

एक दिन राजा रात्रिमें अपना वेश बदलकर, बहुत गरीब आदमीके कपड़े पहनकर घूमने लगे। ठण्डीके दिन थे। एक लुहारके यहाँ एक कड़ाह बन रहा था। उसमें घन मारनेवाले आदमीकी जरूरत थी। राजा इस कामके लिये तैयार हो गये। लुहारने कहा कि एक घंटा काम करनेके दो पैसे दिये जायँगे। राजाने बड़े उत्साहसे, बड़ी तत्परतासे दो घंटे काम किया। राजाके हाथोंमें छाले पड़ गये, पसीना आ गया, बड़ी मेहनत

पड़ी। लुहारने चार पैसे दे दिये। राजा उन चार पैसोंको लेकर आ गया और आकर हाथोंपर पट्टी बाँधी। धीरे-धीरे हाथोंमें पड़े छाले ठीक हो गये।

एक दिन ब्राह्मणीके कहनेपर वे ब्राह्मणदेवता राजाके यहाँ फिर पधारे। राजाने उनका बड़ा आदर किया, आसन दिया, पूजन किया और उनको वे चार पैसे भेंट दे दिये। ब्राह्मण बड़े संतोषी थे। वे उन चार पैसोंको लेकर घर पहुँचे। ब्राह्मणी सोच रही थी कि आज खूब माल मिलेगा। जब उसने चार पैसोंको देखा तो कहा कि राजाने क्या तो दिया और क्या आपने लिया! आप-जैसे पण्डित ब्राह्मण और देनेवाला राजा! ब्राह्मणीने चार पैसे बाहर फेंक दिये। जब सुबह उठकर देखा तो वहाँ चार जगह सोनेकी सीकें दिखायी दीं। सच्चा धन उग जाता है। सोनेकी उन सीकोंको वे रोजाना काटते पर दूसरे दिन वे पुनः उग आतीं। उनको खोदकर देखा तो मूलमें वे ही चार पैसे मिले!

राजाने ब्राह्मणको अन्न नहीं दिया; क्योंकि राजाका अन्न शुद्ध नहीं होता, खराब पैसोंका होता है। मदिरा आदिपर लगे टैक्सके पैसे होते हैं, चोरोंको दण्ड देनेसे प्राप्त हुए पैसे होते हैं—ऐसे पैसोंको देकर ब्राह्मणको भ्रष्ट नहीं करना है। इसलिये राजाने अपनी खरी कमाईके पैसे दिये। आप भी धार्मिक अनुष्ठान आदिमें अपनी खरी कमाईका धन खर्च करो।

२८. पराया हक

दूसरोंका हक हमारे पास न आये—इस विषयमें मनुष्यको खूब सावधान रहना है। अपनी खरी कमाईका अन्न खाओगे तो अन्तःकरण निर्मल होगा और अगर चोरीका, ठगी-धोखेबाजीका, अन्यायका अन्न खाओगे तो अन्तःकरण महान् अशुद्ध हो जायगा।

आजकल टैक्स बहुत बढ़ जानेसे लोग व्यापार आदिमें चोरी-छिपाव करते हैं। जैसे-जैसे वकील सिखाता है, वैसा-वैसा करके वे धन बचानेकी चेष्टा करते हैं। वे विचार ही नहीं करते कि इस प्रकार धन बचानेसे अन्तःकरण कितना मैला हो जायगा! एक सन्त कहा करते थे कि शुद्ध कमाईके धनसे बहुत पवित्रता आती है। उनके पास एक राजा आया करते थे। एक बार राजाने उनसे पूछा कि 'महाराज, आपके यहाँ बहुत-से लोग आया करते हैं और आप भी कई लोगोंके घरोंमें भिक्षाके लिये जाया करते हैं। ऐसा कोई घर आपकी दृष्टिमें है, जिसका अन्न शुद्ध कमाईका हो?' अगर ऐसा घर आपको दीखता है तो बतायें।' सन्तने कहा कि 'अमुक स्थानपर एक बूढ़ी माई रहती है, उसके घरका अन्न शुद्ध है। वह ऊनको कातकर उससे अपनी जीविका चलाती है। उसके पास धन नहीं है, साधारण घास-फूसकी कुटिया है; परन्तु वह पराया हक नहीं लेती, इस कारण उसका अन्न शुद्ध है।' ऐसा सुनकर राजाके मनमें आया कि उसके घरकी रोटी मिल जाय तो बड़ा अच्छा है! राजा स्वयं एक भिखारी बनकर उसके घर पहुँचा और बोला—'माताजी! कुछ भिक्षा मिल जाय।' वह बूढ़ी माई भीतरसे रोटी लायी और बोली—'बेटा!

यह रोटी ले लो।' तब राजाने पूछा—'माताजी, एक बात बताओ कि यह रोटी शुद्ध है न? इसमें पराया हक तो नहीं है?' तो वह बोली—'देख बेटा, बात यह है कि यह पूरी शुद्ध नहीं है, इसमें थोड़ा पराया हक आ गया है! एक दिन रातमें बारात जा रही थी। बारातमें जो गैस-बत्तियाँ थीं, उनके प्रकाशमें मैंने ऊन ठीक की थी—इतना इसमें पराया हक आ गया है। इसके सिवाय मेरी कमाईमें कोई क़सर नहीं है।' राजाने बड़ा आश्चर्य किया कि इतनी-सी कमीका भी इतना खयाल है! दूसरेके उस प्रकाशमें हमारा क्या अधिकार है कि उसमें हम अपनी ऊन ठीक करें?

२९. दुर्गतिका कारण

शरीर बहुत ही प्यारा लगता है, पर यह जानेवाला है। जो जानेवाला है उसकी मोह-ममता पहलेसे ही छोड़ दें। यदि पहलेसे नहीं छोड़ी तो बादमें बड़ी दुर्दशा होगी। भोगोंमें, रुपयोंमें, पदार्थोंमें आसक्ति रह गयी, उनमें मन रह गया तो बड़ी दुर्दशा होगी। साँप, अजगर बनना पड़ेगा; भूत, प्रेत, पिशाच आदि न जाने क्या-क्या बनना पड़ेगा!

एक सन्तकी बात हमने सुनी। विरक्त, त्यागी सन्त थे। पैसा नहीं छूते थे और एकान्तमें भजन करते थे। एक भाई उनकी बहुत सेवा किया करता। रोजाना भोजन आदि पहुँचाया करता। एक बार किसी जरूरी कामसे उसे दूसरे शहर जाना पड़ा। तो उसने सन्तसे कहा कि महाराज! मैं

तो जा रहा हूँ। तो सन्त बोले कि भैया! हमारी सेवा तुम्हारे

अधीन नहीं है, तुम जाओ। उसने कहा कि महाराज! पीछे न जाने कोई सेवा करे न करे? मैं बीस रुपये यहाँ सामने गाड़ देता हूँ, काम पड़े तो आप किसीसे कह देना। बाबाजी ना-ना करते रहे, पर वह तो बीस रुपये गाड़ ही गया। अब वह तो चला गया। पीछे बाबाजी बीमार पड़े और मर गये। मरकर भूत हो गये! अब वहाँ रात्रिमें कोई रहे तो उसे खड़ाऊँकी खट-खट-खट आवाज सुनायी दे। लोग सोचें कि बात क्या है? जब वह भाई आया तो उसे कहा गया कि वहाँ रातको खड़ाऊँकी आवाज आती है, कोई भूत-प्रेत है, पर किसीको दुःख नहीं देता। वह रात्रिमें वहाँ रहा। उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने प्रार्थना की तो बाबाजी दीखे और बोले कि मरते वक्त तेरे रुपयोंकी तरफ मन चला गया था। अब इन्हें तू कहीं लगा दे तो मैं छुटकारा पा जाऊँ! बाबाजीने रुपयोंको काममें भी नहीं लिया पर 'मेरे लिये रुपये पड़े हैं' इस भावसे ही यह दशा हो गयी। अब वे रुपये वहाँसे निकालकर धार्मिक काममें लगाये गये, तब कहीं जाकर बाबाजीकी गति हुई।

वृन्दावनकी एक घटना हमने सुनी थी। एक गलीमें एक भिखारी पैसे माँगा करता था। उसके पास एक रुपयेसे कुछ कम पैसे इकट्ठे हो गये थे। वह मर गया। जहाँ उसके चिथड़े पड़े थे, वहाँ लोगोंने एक छोटा-सा साँप बैठा हुआ देखा। उसे कई बार दूर फेंका गया, पर वह फिर उन्हीं चिथड़ोंमें आकर बैठ जाता। जब नहीं हटा तो सोचा बात क्या है? साँपको दूर फेंककर चिथड़ोंमें देखा तो उसमेंसे कुछ पैसे

मिले। वे पैसे किसी काममें लगा दिये तो फिर वह साँप देखनेमें नहीं आया।

यह जो भीतर वासना रहती है, यह बड़ी भयंकर होती है। वासना तब रहती है, जब वस्तुओंमें प्रियता होती है। जहाँ वस्तुओंकी प्रियता या आकर्षण रहता है, वहीं भगवान्‌की प्रियता जाग्रत् होनी चाहिये।

३०. आदर्श माँ

एक गाँवकी सच्ची घटना है। वहाँ एक मुसलमानके घर बालक हुआ, पर बालककी माँ मर गयी। वह बेचारा बड़ा दुःखी हुआ। एक तो स्त्रीके मरनेका दुःख और दूसरा नन्हें-से बालकका पालन कैसे करूँ—इसका दुःख! पासमें ही एक अहीर रहता था। उसका भी दो-चार दिनका ही बालक था। उसकी स्त्रीको पता लगा तो उसने अपने पतिसे कहा कि उस बालकको ले आओ, मैं पालन करूँगी। अहीर उस मुसलमानके बालकको ले आया। अहीरकी स्त्रीने दोनों बालकोंका पालन किया। उनको अपना दूध पिलाती, स्नेहसे रखती, प्यार करती। उसके मनमें द्वैधीभाव नहीं था कि यह मेरा बालक है और यह दूसरेका बालक है। जब वह बालक बड़ा हो गया, कुछ पढ़नेलायक हो गया, तो उसने उस मुसलमानको बुलाकर कहा कि अब तुम अपने बच्चेको ले जाओ और पढ़ाओ-लिखाओ, जैसी मर्जी आये, वैसा करो। वह उस बालकको ले गया और उसको पढ़ाया-लिखाया।

पढ़-लिखकर वह एक अस्पतालमें कम्पाउण्डर बन गया।

उधर संयोगवश अहीरकी स्त्रीकी छाती कुछ कमजोर हो गयी और उसके भीतर घाव हो गया। इलाज करवानेके लिये वे अस्पतालमें डाक्टरके पास पहुँचे। डॉक्टरने बीमारी देखकर कहा इसको खून चढ़ाया जाय तो यह ठीक हो जायगी। खून कौन दे? परीक्षा की गयी। मुसलमानका वह लड़का, जो कम्पाउण्डर बना हुआ था, उसी अस्पतालमें था। दैवयोगसे उसका खून मिल गया। उस माईने तो उसको पहचाना नहीं, पर उस लड़केने उसको पहचान लिया कि यही मेरा पालन करनेवाली माँ है। बचपनमें उसका दूध पीकर पला था, इस कारण खूनमें एकता आ गयी थी। डॉक्टरने कहा, इसका खून चढ़ाया जा सकता है। उससे पूछा गया कि क्या तुम खून दे सकते हो? उसने कहा कि खून तो मैं दे दूँगा, पर दो सौ रुपये लूँगा। अहीरने उसको दो सौ रुपये दे दिये। उसने आवश्यकतानुसार अपना खून दे दिया। वह खून उस माईको चढ़ा दिया गया, जिससे उसका शरीर ठीक हो गया और वह अपने घर चली गयी।

कुछ दिनोंके बाद वह लड़का अहीरके घर गया और हजार-दो-हजार रुपये माँके चरणोंमें भेंट करके बोला कि आप मेरी माँ हैं। मैं आपका ही बच्चा हूँ। आपने ही मेरा पालन किया है। ये रुपये आप ले लें। उसने लेनेसे मना किया तो कहा कि ये आपको लेने ही पड़ेंगे। उसने अस्पतालकी बात याद दिलायी कि खूनके दो सौ रुपये मैंने इसलिये लिये थे कि मुफ्तमें आप खून नहीं लेतीं और खून न लेनेसे आपका बचाव नहीं होता। यह खून तो वास्तवमें

आपका ही है। आपके दूधसे ही मैं पला हूँ, इसलिये मेरा यह शरीर और सब कुछ आपका ही है। मेरे रुपये शुद्ध कमाईके हैं। आपकी कृपासे मैं लहसुन और प्याज भी नहीं खाता हूँ। अपवित्र, गन्दी चीजोंमें मेरी अरुचि हो गयी है। अतः ये रुपये आपको लेने ही पड़ेंगे। ऐसा कहकर उसने रुपये दे दिये। अहीरकी स्त्री बड़े शुद्ध भाववाली थी, जिससे उसके दूधका असर ऐसा हुआ कि वह लड़का मुसलमान होते हुए भी अपवित्र चीज नहीं खाता था।

आप विचार करें। जितनी माताएँ हैं, सब अपने-अपने बच्चोंका पालन करती ही हैं। हम सबका पालन बहनों-माताओंने ही किया है। परन्तु उनकी कोई कथा नहीं सुनाता, कोई बात नहीं करता। अहीरकी स्त्रीकी बात आप और हम करते हैं। उसका हमपर असर पड़ता है कि कितनी विशेष दया थी उसके हृदयमें! उसके मनमें यह भेद-भाव नहीं था कि दूसरेके बच्चेका मैं कैसे पालन करूँ? इसलिये आज हमलोग उसका गुण गाते हैं कि कितनी श्रेष्ठ माँ थी, जिसने दूसरे बालकका भी पालन किया और पालन करके उसके पिताको सौंप दिया! अपने बच्चोंका पालन तो कुतिया भी करती है, इसमें क्या बड़ी बात है?

३१. राजाको उपदेश

एक राजा था। वह एक दिन शामके वक्त अपने महलकी छतपर घूम रहा था। साथमें पाँच-सात आदमी भी थे। महलके पीछे कुछ मकानोंके खण्डहर थे। उन खण्डहरोंमें कभी-कभी एक सन्त आकर ठहरा करते थे। राजाने उन खण्डहरोंकी तरफ संकेत करते हुए अपने आदमियोंसे पूछा कि 'यहाँ एक सन्त आकर ठहरा करते थे न?' उन्होंने कहा कि 'हाँ महाराज! आया करते थे, पर कुछ वर्षोंसे उनको यहाँ आते देखा नहीं।' राजाने कहा कि 'वे बड़े विरक्त, त्यागी सन्त थे। उनके दर्शनसे बड़ी शान्ति मिलती थी। वे मिलें तो उनसे कोई बात पूछें। उनका पता लगाओ।' राजाके आदमियोंने उनका पता लगाया तो पता लगा कि वे शरीर छोड़ गये। मनुष्यकी यह बड़ी भूल होती है कि जब कोई मौजूद होता है, तब उससे लाभ लेते नहीं और जब वह मर जाता है, तब रोते हैं। राजाने कहा कि 'अहो! हमसे बड़ी गलती हो गयी कि हम उनसे लाभ नहीं ले सके! अब उनका कोई शिष्य हो तो उसको ले आओ, हम उससे मिलेंगे।' राजपुरुषोंने खोज की तो एक साधु मिले। उनसे पूछा कि 'महाराज! क्या आप उन सन्तको जानते हैं?' वे बोले कि 'हाँ, जानता हूँ। वे बड़े ऊँचे महात्मा थे।' राजपुरुषोंने फिर पूछा कि 'क्या आप उन सन्तके शिष्य हैं?' साधुने कहा कि 'नहीं, वे किसीको शिष्य नहीं बनाते थे। हाँ, मैं उनके साथमें जरूर रहा हूँ।' राजाके पास यह समाचार पहुँचा तो राजाने उनको ही लानेकी आज्ञा दी। राजाके आदमी उस साधुके पास गये और बोले कि 'महाराज! राजाने आपको बुलाया

है, हमारे साथ चलिये।' वे बोले कि 'भाई! मैंने क्या अपराध किया है?' कारण कि राजा प्रायः उसीको लानेकी आज्ञा देते हैं, जिसने कोई गलती की हो। राजपुरुषोंने कहा कि 'नहीं महाराज! आपको तो वे सत्संगके लिये, पारमार्थिक बातें पूछनेके लिये बुलाते हैं। आप हमारे साथ पधारें।' वे साधु 'अच्छा' कहकर उनके साथ चल दिये। रास्तेमें वे एक गलीमें जाकर बैठ गये। राजपुरुषोंने समझा कि वे लघुशंका करते होंगे। गलीमें एक कुतियाने बच्चे दे रखे थे। साधुने उनमेंसे एक पिल्लेको उठा लिया और अपनी चद्दरके भीतर छिपाकर राजपुरुषोंके साथ चल पड़े।

राजाओंके यहाँ आसन (कुर्सी)-का बड़ा महत्त्व होता है। किसको कौन-सा आसन दिया जाय, किसको कितना आदर दिया जाय, किसको ऊँचा और किसको नीचा आसन दिया जाय—इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। राजाने साधुके बैठनेके लिये गलीचा बिछा दिया और खुद भी उसपर बैठ गये, जिससे ऊँचे-नीचे आसनका कोई विचार न रहे। बाबाजीने बैठते ही अपने दोनों पैर राजाके सामने फैला दिये। राजाने सोचा कि यह मूर्ख है, सभ्यताको जानता नहीं! कभी राजसभामें गया नहीं, इसलिये राजाओंके सामने कैसे बैठना चाहिये—यह इसको आता नहीं। राजाने पूछ लिया—पैर फैलाये कबसे? बाबाजी बोले—हाथ सिकोड़े तबसे। तात्पर्य है कि कुछ लेनेकी इच्छा होती तो हम हाथ फैलाते और पैर सिकोड़ते, पर हमें लेना कुछ है ही नहीं, इसलिये हाथ सिकोड़ लिये और पैर फैला लिये। ऐसा कहकर बाबाजीने

हाथ-पैर ठीक कर लिये। राजाने उत्तर सुनकर विचार किया कि ये मूर्ख नहीं हैं, प्रत्युत बड़े समझदार, त्यागी और चेतानेवाले हैं। राजाने उन सन्तकी चर्चा की तो साधुने कहा कि वे बड़े अच्छे सन्त थे, वैसे सन्त बहुत कम हुआ करते हैं।

राजाने पूछा—आप उनके साथ रहे हैं न?

साधुने कहा—हाँ, मैं उनके साथ रहा तो हूँ।

राजाने पूछा—आपने उनसे कुछ लिया होगा?

साधुने कहा—हमने लिया नहीं राजन्!

राजा बोला—तो क्या आप रीते ही रह गये?

साधुने कहा—नहीं, ऐसे सन्तके साथ रहनेवाला कभी रीता रह सकता ही नहीं। हमने लिया तो नहीं, पर रह गया।

राजाने पूछा—क्या रह गया?

साधुने कहा—जैसे डिबियामेंसे कस्तूरी निकालनेपर भी उसमें सुगन्ध रह जाती है, घीके बर्तनमेंसे घी निकालनेपर भी उसमें चिकनाहट रह जाती है, ऐसे ही सन्तके साथ रहनेसे उनकी सुगन्ध, चिकनाहट रह गयी।

राजा बोला—महाराज! वह सुगन्ध, चिकनाहट क्या है—यह मेरेको बताइये।

साधुने कहा—राजन्! यह हम साधुओंकी, फकीरोंकी बात है, राजाओंकी बात नहीं। आप जानकर क्या करोगे?

राजाने कहा—नहीं महाराज! आप जरूर बताइये।

साधुने चद्दरके पीछे छिपाया पिल्ला बाहर निकाला और राजाके सामने कर दिया।

राजाने कहा—हम समझे नहीं महाराज!

साधुने कहा—आप बुरा तो नहीं मानोगे?

राजाने कहा—अरे, मैं तो पूछता ही हूँ, बुरा कैसे मानूँगा? आप सच्ची बात कह दें।

साधुने कहा—राजन्! मेरेको आपमें और इस पिल्लेमें फर्क नहीं दीखता; यह समता ही उन सन्तके संगकी सुगन्ध, चिकनाहट है! यह पिल्ला बहुत साधारण चीज है और आप बहुत विशेष हैं—यह बात तो सच्ची है, पर मेरेको ऐसा नहीं दीखता। आपमें भी प्राण हैं और इसमें भी प्राण हैं। आपके भी श्वास चलते हैं और इसके भी श्वास चलते हैं। आपका शरीर भी पाँच भूतोंसे बना है और इसका शरीर भी पाँच भूतोंसे बना है। आप भी देखते हैं, यह भी देखता है। आप भी खाते-पीते हैं, यह भी खाता-पीता है। आपमें और इसमें फर्क क्या है? संसारके सभी प्राणियोंमें कोई-न-कोई विशेषता है ही। किसीमें कोई विशेषता है तो किसीमें कोई विशेषता है, टोटलमें सब बराबर हुए! आप ऊँचे पदपर हैं और यह नीचा है—यह फर्क तो तब होता है, जब मेरा स्वार्थका सम्बन्ध हो। मेरा किसीसे स्वार्थका सम्बन्ध है ही नहीं, न आपसे कुछ लेना है, न कुत्तेसे कुछ लेना है, फिर मेरे लिये आपमें और इसमें फर्क क्या है? आप बुरा न मानें। आपने बतानेका आग्रह किया, इसलिये साफ बात कह दी। मैं आपका तिरस्कार नहीं करता हूँ, प्रत्युत सत्कार करता हूँ; क्योंकि आप प्रजाके मालिक हैं।

तात्पर्य है कि जब हमें संसारसे कुछ लेना होता है, तब हमें कोई धनी और कोई दरिद्र दीखता है। धनी मिले या

दरिद्र मिले, हमें उनसे कुछ लेना है ही नहीं तो फिर दोनोंमें क्या फर्क हुआ? एक साधु थे। घरोंसे भिक्षा लेना और पाकर चले आना—यह उनका प्रतिदिनका नियम था। शहरसे भिक्षा लाते समय बीचमें बहुत भीड़ रहती है, अतः स्पर्शदोषसे बचनेके लिये वे वहीं बैठकर पा लेते थे। एक दिन भिक्षा पानेके बाद वे अपना पात्र माँजने लगे तो एक़ सेठने कहा कि आपका पात्र मैं माँज देता हूँ। साधुने कहा कि आपसे नहीं मँजवाना है तो वह सेठ बोला कि मेरा नौकर माँज देगा। साधुने कहा कि 'मेरे लिये आपमें और नौकरमें फर्क क्या है? आप माँजें या नौकर माँजे, फर्क क्या पड़ा? फर्क तो तब पड़े, जब मैं आपको बड़ा आदमी समझूँ और नौकरको मामूली आदमी समझूँ। मेरे लिये जैसे आप आदरणीय हैं, ऐसे ही नौकर आदरणीय है और जैसे नौकर आदरणीय है, ऐसे ही आप आदरणीय हैं। नौकर है तो आपका है, मेरा नौकर है क्या? उसको मैं तनख्वाह देता हूँ क्या? मेरा सम्बन्ध तो आपके साथ और नौकरके साथ समान ही है। अन्तर तो तब हो जब मेरेको कुछ लेना हो, कोई राग-द्वेषपूर्वक सम्बन्ध जोड़ना हो!'

३२. गीताके प्रभावसे चुड़ैल भागी

गीताके अध्ययन और श्रवणकी तो बात ही क्या है, गीताको रखनेमात्रका भी बड़ा माहात्म्य है! एक सिपाही था। वह रातके समय कहींसे अपने घर आ रहा था। रास्तेमें उसने चन्द्रमाके प्रकाशमें एक वृक्षके नीचे एक सुन्दर स्त्री देखी। उसने उस स्त्रीसे बातचीत की तो उस स्त्रीने कहा—मैं आ जाऊँ क्या? सिपाहीने कहा—हाँ, आ जा। सिपाहीके ऐसा कहनेपर वह स्त्री, जो वास्तवमें चुड़ैल थी, उसके पीछे आ गयी। अब वह रोज रातमें उस सिपाहीके पास आती, उसके साथ सोती, उसका संग करती और सबेरे चली जाती। इस तरह वह उस सिपाहीका शोषण करने लगी अर्थात् उसका खून चूसकर उसकी शक्ति क्षीण करने लगी। एक बार रातमें वे दोनों लेट गये, पर बत्ती जलती रह गयी तो सिपाहीने उससे कहा कि तू बत्ती बन्द कर दे। उसने लेटे-लेटे ही अपना हाथ लम्बा करके बत्ती बन्द कर दी। अब सिपाहीको पता लगा कि यह कोई सामान्य स्त्री नहीं है, यह तो चुड़ैल है! वह बहुत घबराया। चुड़ैलने उसको धमकी दी कि अगर तू किसीको मेरे बारेमें बतायेगा तो मैं तेरेको मार डालूँगी। इस तरह वह रोज रातमें आती और सबेरे चली जाती। सिपाहीका शरीर दिन-प्रतिदिन सूखता जा रहा था। लोग उससे पूछते कि भैया! तुम इतने क्यों सूखते जा रहे हो? क्या बात है, बताओ तो सही! परन्तु चुड़ैलके डरके मारे वह किसीको कुछ बताता नहीं था। एक दिन वह दुकानसे

दवाई लाने गया। दुकानदारने दवाईकी पुड़िया बाँधकर दे दी। सिपाही उस पुड़ियाको जेबमें डालकर घर चला आया। रातके समय जब वह चुड़ैल आयी, तब वह दूरसे ही खड़े-खड़े बोली कि तेरी जेबमें जो पुड़िया है, उसको निकालकर फेंक दे। सिपाहीको विश्वास हो गया कि इस पुड़ियामें जरूर कुछ करामात है, तभी तो आज यह चुड़ैल मेरे पास नहीं आ रही है! सिपाहीने उससे कहा कि मैं पुड़िया नहीं फेकूँगा। चुड़ैलने बहुत कहा, पर सिपाहीने उसकी बात मानी नहीं। जब चुड़ैलका उसपर वश नहीं चला, तब वह चली गयी। सिपाहीने जेबमेंसे पुड़ियाको निकालकर देखा तो वह गीताका फटा हुआ पन्ना था! इस तरह गीताका प्रभाव देखकर वह सिपाही हर समय अपनी जेबमें गीता रखने लगा। वह चुड़ैल फिर कभी उसके पास नहीं आयी।

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
465	साधन-सुधा-सिन्धु (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें)	1308	प्रेरक कहानियाँ
1675	सागरके मोती	1408	सब साधनोंका सार
1598	सत्संगके फूल	411	साधन और साध्य
1633	एक संतकी वसीयत	412	तात्त्विक प्रवचन
400	कल्याण-पथ	414	तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार
401	मानसमें नाम-वन्दना	410	जीवनोपयोगी प्रवचन
605	जित देखूँ तित तू	822	अमृत-बिन्दु
406	भगवत्प्राप्ति सहज है	821	किसान और गाय
535	सुन्दर समाजका निर्माण	417	भगवन्नाम
1485	ज्ञानके दीप जले	416	जीवनका सत्य
1447	मानवमात्रके कल्याणके लिये	418	साधकोंके प्रति
1175	प्रश्नोत्तर मणिमाला	419	सत्संगकी विलक्षणता
1247	मेरे तो गिरधर गोपाल	545	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग
403	जीवनका कर्तव्य	420	मातृशक्तिका घोर अपमान
436	कल्याणकारी प्रवचन	421	जिन खोजा तिन पाइयाँ
405	नित्ययोगकी प्राप्ति	422	कर्मरहस्य
1093	आदर्श कहानियाँ	424	वासुदेवः सर्वम्
407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	425	अच्छे बनो
408	भगवान्‌से अपनापन	426	सत्संगका प्रसाद
861	सत्संग-मुक्ताहार	1733	संत-समागम
860	मुक्तिमें सबका अधिकार	1019	सत्यकी खोज
409	वास्तविक सुख	1479	साधनके दो प्रधान सूत्र

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
1035	सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	433	सहज साधना
1360	तू-ही-तू	444	नित्य-स्तुति और प्रार्थना
1434	एक नयी बात	435	आवश्यक शिक्षा
1440	परम पितासे प्रार्थना	1072	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?
1441	संसारका असर कैसे छूटे?	515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन
1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और......	438	दुर्गतिसे बचो
431	स्वाधीन कैसे बनें?	439	महापापसे बचो
702	यह विकास है या...	440	सच्चा गुरु कौन?
589	भगवान् और उनकी भक्ति	729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण
617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	445	हम ईश्वरको क्यों मानें?
434	शरणागति	745	भगवत्तत्त्व
770	अमरताकी ओर	632	सब जग ईश्वररूप है
432	एकै साधे सब सधै	447	मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा
427	गृहस्थमें कैसे रहें?		

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली
819	श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य	142	चेतावनी-पद-संग्रह
207	रामस्तवराज—(सटीक)	144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	1214	मानस-स्तुति-संग्रह
231	रामरक्षास्तोत्रम्	1344	सचित्र-आरती-संग्रह
1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	208	सीतारामभजन
054	भजन-संग्रह		

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर-२७३००५	गीताप्रेस —पो० गीताप्रेस	© (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स २३३६९९७
	website : www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org	
दिल्ली-११०००६	२६०९, नयी सड़क	© (०११) २३२६९६७८; फैक्स २३२५९१४०
कोलकाता-७००००७	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड e-mail:gobindbhawan@gitapress.org	© (०३३) २२६८६८९४; फैक्स २२६८०२५१
मुम्बई-४००००२	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट) मरीन लाईन्स स्टेशनके पास	© (०२२) २२०३०७१७
कानपुर-२०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड	© (०५१२) २३५२३५१; फैक्स २३५२३५१
पटना-८००००४	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	© (०६१२) २३००३२५
राँची-८३४००१	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	© (०६५१) २२१०६८५
सूरत-३९५००१	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार e-mail: suratdukan@gitapress.org	© (०२६१) { २२३७३६२, २२३८०६५
इन्दौर-४५२००१	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग	© (०७३१) २५२६५[illegible], २५११९७७
जलगाँव-४२५००१	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	© (०२५७) २२२६३९३
हैदराबाद-५०००९५	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	© (०४०) २४७५८३११
नागपुर-४४०००२	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड	© (०७१२) २७३४३५४
कटक-७५३००९	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	© (०६७१) २३३५४८१
रायपुर-४९२००९	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक	© (०७७१) ४०३४४३०
वाराणसी-२२१००१	५९/९, नीचीबाग	© (०५४२) २४१३५५१
हरिद्वार-२४९४०१	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	© (०१३३४) २२२६५७
ऋषिकेश-२४९३०४	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम e-mail:gitabhawan@gitapress.org	© (०१३५) { २४३०१२२, २४३२७९२
कोयम्बटूर-६४१०१८	गीताप्रेस मेंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स	© (०४२२) ३२०२५२१
बेंगलोर-५६००२७	१५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालबाग रोड	© (०८०) २२९५५१९०, ३२४०८१२४

स्टेशन-स्टाल— दिल्ली (प्लेटफार्म नं० १२); नयी दिल्ली (नं० १२-१३); हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली] (नं० ४-५); कोटा [राजस्थान] (नं० १); बीकानेर (नं० १); गोरखपुर (नं० १); कानपुर (नं० १); लखनऊ [एन० ई० रेलवे]; वाराणसी (नं० ४-५); मुगलसराय (नं० ३-४); हरिद्वार (नं० १); पटना (मुख्य प्रवेशद्वार); राँची (नं० १); धनबाद (नं० २-३); मुजफ्फरपुर (नं० १); समस्तीपुर (नं० २); हावड़ा (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); कोलकाता (नं० १); सियालदा मेन (नं० ८); आसनसोल (नं० ५); कटक (नं० १); भुवनेश्वर (नं० १); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० १); सिकन्दराबाद [आं० प्र०] (नं० १); गुवाहाटी (नं० १); खड़गपुर (नं० १-२); रायपुर [छत्तीसगढ़] (नं० १); बेंगलोर (नं० १); यशवन्तपुर (नं० ६); श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम् [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० १) एवं अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-३३१००१	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क © (०१५६२) २५२६७४
ऋषिकेश-२४९१९२	मुनिकी रेती
तिरुपति-५१७५०४	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स
बेरहामपुर-७४२१०१	म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, ब्लाक-बी, शॉप नं० ५७—६०, प्रथम तल, के० एन० रोड (मुर्शिदाबाद)

ISBN 81-293-0176-8
9788129301765